चन्दामामा
जनवरी १९८८
२.५०

डायमंड कॉमिक्स
अब आप घर बैठे प्राप्त कर सकते हैं!
तरीका बहुत आसान है।
अंकुर बाल बुक क्लब के सदस्य बनें
और 5/- सदस्यता शुल्क डाक टिकट या मनीआर्डर से भेज दें और हर महीने घर बैठे 4 डायमंड कामिक्स 20/- के स्थान पर 18/- में डाक व्यय फ्री प्राप्त करें। यानि हर माह 2/- की छूट और 5/- डाक व्यय भी माफ यानि घर बैठे कामिक्स मिलेंगे। और डाक व्यय भी नहीं देना होगा और 2/- की छूट अलग।
इस माह के नये डायमंड कामिक्स
साथ ही मुफ्त पाईये पहेलियां ही पहेलियां
5/- का मनीआर्डर आते ही हम आप को सदस्य बना लेंगे और उपहार स्वरूप पहेलियां ही पहेलियां मुफ्त भेज देंगे। आम के आम गुठलियों के दाम।
सदस्यता कूपन
मुझे अंकुर बाल बुक का सदस्य बना लें सदस्यता शुल्क पांच रुपये मनी आर्डर/डाक टिकट के साथ भेजा जा रहा है। (सदस्यता शुल्क प्राप्त न होने की स्थिति में आपको सदस्यता नहीं दी जायेगी) मैंने नियमों को अच्छी तरह पढ़ लिया है। मैं हर माह वी.पी. छुड़ाने का संकल्प करता/करती हूँ।
नाम ....
पिता का नाम ....
पता..........
डाकखाना..........
डायमंड कामिक्स प्रा.लि.
2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

चन्दामामा

जनवरी 1988

★

विषय-सूची

★
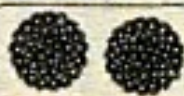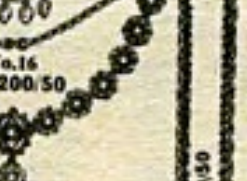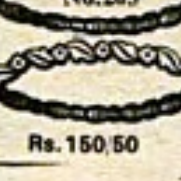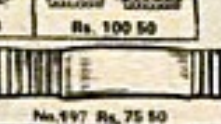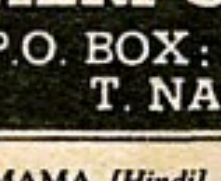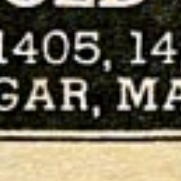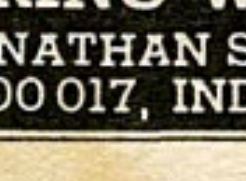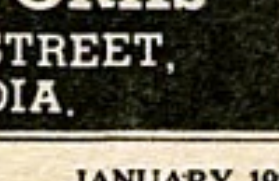
एक प्रति : २-५०

वार्षिक चन्दा : ३०-००

'मेरी'

22 कॅरट् स्वर्ण-आवृत जेवरों की चातुरी में है शीघ्र नामी उत्तमता की प्रकृति । चमकीला सुन्दरी । सब की मन पसन्द, बेजोड़ रंगरूप में गारंटी जेवरों । मंगवाते वक्त जेवरों की संख्या सूचीत करे । वी पी पी. खर्च अलग । मुफ्त केटलाग के लिए लिखे ।

MERI GOLD COVERING WORKS

P.O. BOX : 1405, 14, RANGANATHAN STREET,
T. NAGAR, MADRAS-600 017, INDIA.

No share prices,
no political fortunes, yet...

Over 40% of Heritage readers are professionals or executives, 61% from households with a professional / executive as the chief wage earner. Half hold a postgraduate degree or a professional diploma.

– from an IMRB survey conducted in Oct. 1986

It's an unusual magazine. It has a vision for today and tomorrow.
It features ancient cities and contemporary fiction, culture and scientific developments, instead of filmstar interviews and political gossip. And it has found a growing readership, an IMRB survey reveals. Professionals, executives and their families are reading The Heritage in depth – 40% from cover to cover, 42% more than half the magazine.
More than 80% of The Heritage readers are reading an issue more than once.
And over 90% are slowly building their own Heritage collection.
Isn't it time you discovered why?

CMR-2155

So much in store, month after month.

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी

प्राय: मनुष्य स्वभावत: स्वार्थी नहीं होता, सामाजिक स्थितियों के कारण अनेक मानसिक दशाओं का शिकार हो जाता है। अगर आसानी से मनुष्य का स्वार्थ पूरा होने लगे, तो वह उसे अनुचित होते हुए भी स्वीकार लेता है। पर विपदा के समय उसके अन्दर पाप-पुण्य का विचार आता है और वह सच्चे मार्ग की ओर अग्रसर होता है। "दान" शीर्षक कहानी में पढ़िये राजू किसान के इस परिवर्तन को।

अमर वाणी

गिरयो गुरवस्तेभ्योऽप्युर्वी गुर्वी, ततोऽपि जगदण्डम्।
तस्मादप्यतिगुरवः, प्रलयेप्यचला महात्मानः ॥

[पर्वत महान होते हैं, पर्वतों से अधिक विशाल पृथ्वी है, पृथ्वी से अधिक विशाल यह विश्व है। विश्व से भी अधिक गुरुगुणसंपन्न हैं प्रलयकाल में भी अविचलित रहनेवाले महात्मा।]

वर्ष : ४० जनवरी १९८८ अंक : ५

एक प्रति : २-५० :: वार्षिक चन्दा : ३०-००

'चन्दामामा' के संवाद

अतिप्राचीन अंडे

पश्चिम कोलोराडा में १४५० लाख वर्ष पुरानी राक्षस छिपकली डिनोजार के अंडों के खपरे पाये गये हैं। इन्हें विश्व भर का प्राचीनतम अंडा माना जा रहा है। छिपकली के अंडे देने के स्थान पर वैज्ञानिक डिनोजार के अवशिष्टों की खोज में लगे हुए हैं। इन खपरों के आधार पर यह अनुमान लगाया जा रहा है कि इस अंडे की लंबाई २० सेंटीमीटर और चौड़ाई ९ सेंटीमीटर होनी चाहिए।

बालक का 'जल-ज्ञान'

साऊदी अरब में हांदन असैरी नाम का एक दस वर्षीय बालक ज़मीन के नीचे कहाँ पानी है, इस बात का पता बड़ी आसानी से दे रहा है। असैरी का पिता अपने घर के पास कुआँ खुदवाने के लिए स्थान की खोज कर रहा था। इस बालक ने पानी की सतह का पता अनायास ही बता दिया। इसके बाद असैरी की सहायता से आभा के दक्षिणी प्रान्त के निवासियों ने लगभग २५० कुएं बनवाये।

सूर्य की आयु

यह अनुमान लगाया गया है सूर्यमंडल की आयु क़रीब ६०,००० लाख वर्ष होनी चाहिए। परन्तु भारतीय खगोल शास्त्री श्री बदनवाल श्रीकांतन का कथन है कि सूर्य की आयु ४६०० लाख वर्ष से अधिक नहीं है। मास्को में आयोजित अंतराष्ट्रिय विश्व किरण विज्ञान परिषद की बैठक में उन्होंने इस बात की घोषणा की है। उनके कथनानुसार पूर्वनिश्चित धारणा में १४००० लाख वर्ष का अन्तर आ गया है।

एक पैर पर विश्व की प्रदक्षिणा

द्वितीय विश्वयुद्ध में टिस्टन जोन्स नामक एक सैनिक के बाये पैर में गहरी चोट लगी, परिणामस्वरूप उसे समुद्री यात्रा के लिए अनुपयुक्त ठहराकर ब्रिटिश रॉयल नेवी से हटा दिया गया। इसके बाद जोन्स का यह पैर काट भी दिया गया। फिर भी उसने गत ३४ वर्षों में ६४०,०० कि॰ मी॰ दूरी की समुद्री यात्रा की और इस प्रकार उसने तीन बार विश्व की परिक्रमा की है।

प्राचीन चरित्रः

दुर्गम

प्राचीन काल में दुर्गम नाम का एक दैत्य था। वह साधुओं एवं मुनियों को त्रास देने के लिए नित नये उपायों का अनुवेषण करता था। एक बार उसने सोचा कि मुनियों द्वारा संपन्न किये जानेवाले यज्ञों का मूल वेद हैं। यज्ञों को रोकने के लिए आवश्यक है कि वेदों को दुषप्राप्त कर दिया जाये। ऐसा निश्चय करके दुर्गम ने तपस्या करके अपूर्व शक्तियां प्राप्त कीं। मुनियों के पास से वेदों को चुरा लिया। साथ ही ऐसा एक उपाय भी किया कि ऋषि-मुनि वेद-मंत्रों को भूल जायें।

ऋषि-मुनि यज्ञ संपन्न करने में असमर्थ होगये। मंत्र-विस्मरण के कारण संध्या-वन्दन भी न हो सका। ऋषि-मुनि दुख के सागर में डूब गये। यज्ञ एवं स्तुति-प्रार्थना के न होने से मानव एवं दिव्य शक्तियों के बीच का सम्पर्क टूट गया। ऋतु-चक्र भंग होगया। समय पर वर्षा न होने के कारण वनस्पतियाँ सूख गयीं। नदियों में जल न रहा।

मनुष्य के जीवन में इन नयी विपदाओं से दुख बढ़ता गया। अंत में ऋषि-मुनियों ने हिमालय की ओर प्रस्थान किया और वहाँ जगन्माता दुर्गा देवी की शरण ली। दुर्गा माता अपनी सन्तानों की व्यथा सुनकर दयार्द्र हो उठीं। उनके नेत्र सजल होगये। दूसरे ही क्षण आकाश में मेघ छागये और मूसलाधार वृष्टि हुई।

दैत्य दुर्गम को जब यह समाचार मिला कि सारे ऋषि—मुनि हिमालय में दुर्गा देवी के दर्शनार्थ गये हैं, तो वह भी वहाँ पहुँचा। उस समय दुर्गामाता की दिव्य देह से सहस्त्रों आयुध निकले और दुर्गम के शरीर को बेध दिया। दुर्गम निष्प्राण हो गिर पड़ा।

दैत्य दुर्गम की मृत्यु के पश्चात् मुनियों को पुनः वेद प्राप्त हुए। यज्ञ याग आदि पुनीत कृत्य पुनः संपन्न होने लगे। सारे जगत में सुख-शांति प्रतिष्ठित हुई।

दंड जो वरदान बन गया

डमरुगाँव में शीतलप्रसाद नाम का एक गृहस्थ रहता था। शीतलप्रसाद मध्यवित्त परिवार का था। अब उसके घर में वह और उसकी इकलौती बेटी सुमन, बस ये ही दो प्राणी थे। जब सुमन अबोध बालिका थी, तभी शीतलप्रसाद की पत्नी का देहान्त होगया था। शीतलप्रसाद ने ही सुमन को पाल-पोसकर बड़ा किया था। अब वह विवाहयोग्य अवस्था में प्रवेश कर चुकी थी।

शीतलप्रसाद ने अपनी पुत्री के लिए वर ढूंढ़ना प्रारंभ किया। वह किसी ऐसे घर में सुमन को देना चाहता था जो संपन्न होने के साथ-साथ सभ्य और सुसंस्कृत भी हो। एक दिन भरतपुर नगर का एक धनाढ्य व्यापारी श्यामसिंह अपने पुत्र महेश के लिए पत्नी-पुत्र सहित सुमन को देखने के लिए आया। सुमन की सादगीभरी सुन्दरता, सभ्य व्यवहार और गृहकार्य में कुशलता—सभी को सुमन बहुत पसन्द आयी। पर उन लोगों ने अपना निर्णय उसी समय नहीं सुनाया। "चार-पाँच दिन में हम अपना निर्णय देंगे" यह कहकर वे चले गये।

उसी दिन शाम को जब सुमन रसोईघर में खाना बना रही थी, शीतलप्रसाद बाज़ार से लौटकर आया और बोला, "बेटी, मुझे तो लगता है कि यह रिश्ता तय होगया है। अब तो तू ससुराल चली जायेगी, तब मुझे ही भोजन पकाना पड़ेगा। इसलिए तू मुझे खाना बनाना सिखा दे!" यह कहकर शीतलप्रसाद हँसने लगा।

उसी समय शीतलप्रसाद का एक मित्र माधोसिंह आ पहुँचा। उसने कहा, "देखो, शीतला! तुम बेटी सुमन के रिश्ते के लिए इधर-उधर बहुत छानबीन कर रहे हो। मेरे चचेरे भाई देवीसिंह के घर राजाराम नाम का एक युवक आया हुआ है। वह सुंदर, सुशिक्षित और होनहार है। सुना है वह कल

ओमप्रकाश गुप्त

सुबह ही वीरमपुर अपने गाँव लौट जायेगा। क्यों न हम उसे अपनी सुमन को दिखलादें?"

शीतलप्रसाद बोला, "माधो, आज सुबह ही भरतपुर से एक रिश्ता आया था। वे लोग सुमन को देख भी गये हैं। पर उन लोगों ने अभी अपनी स्वीकृति नहीं दी है। क्या ऐसी स्थिति में दूसरा रिश्ता देखना उचित होगा ?"

"वे लोग अगर सुमन को पसंद कर गये होते तो बात अलग थी। पर जब उन लोगों ने अपनी स्वीकृति नहीं दी है तो दूसरी जगह बात चलाने में मैं तो कोई दोष नहीं समझता।" माधोसिंह ने कहा।

शीतलप्रसाद को भी यह बात ठीक लगी। वह स्वीकृति में सिर हिलाकर मौन रह गया। कुछ देर बाद माधोसिंह राजाराम को साथ लेकर आगया।

दस-पंद्रह मिनट तक इधर-उधर की चर्चा होती रही। इसके बाद राजाराम बोला, "मेरे अपना कहनेवाला कोई नहीं है। जायदाद के नाम पर एक छोटा-सा मकान है और उसके चारों तरफ़ थोड़ी-सी ज़मीन है। मैं उस ज़मीन पर काफ़ी मात्रा में साग-सब्जी की पैदावार करता हूँ। वह साग-सब्ज़ी बाज़ार में अच्छे मुनाफ़े के साथ निकल जाती है। मेरे पास चार भैंसें भी हैं। शहर का एक व्यापारी सारा दूध ख़रीदकर ले जाता है। मेरा विश्वास है कि इस आमदनी से मैं भविष्य में अपनी गृहस्थी आराम से चला सकूँगा।"

वहाँ से चलते समय राजाराम ने शीतलप्रसाद से कहा, "आपकी कन्या को कोई भी युवक सहर्ष स्वीकार करेगा। मैं इतना ही कहकर विदा लेता हूँ। यदि आपकी पुत्री को भी स्वीकार हो, तो आप अपने निर्णय की सूचना मुझे देने की कृपा करें।"

सुमन को राजाराम एक सुसंस्कृत युवक लगा। उसकी पसंद को भाँपकर शीतलप्रसाद ने कहा, "राजाराम सुंदर है और मिलनसार भी है। पर भरतपुर का रिश्ता इस अर्थ में बेहतर है, क्योंकि वह एक धनाढ्य परिवार है।"

दूसरे दिन सुबह के समय शीतलप्रसाद ने सुमन से कहा, "बेटी, मैं भरतपुर जाकर श्यामसिंह के निर्णय का पता लगाता हूँ। कहीं एक रिश्ते के चक्कर में दूसरा रिश्ता भी हाथ से न

निकल जाये। हमें राजाराम को भी अपना निर्णय बताना है।" यह कहकर शीतलप्रसाद एक किराये की गाड़ी से भरतपुर चला गया।

अपने पिता के चले जाने के बाद सुमन दरवाज़ा बंद कर रही थी कि तभी एक आगंतुक वहाँ आया और उसने सुमन से पूछा, "क्या यह शीतलप्रसाद जी का घर है ?"

"जीहाँ! पर वे इस समय घर पर नहीं हैं। कुछ काम हो तो मुझे बतायें, मैं उनसे कह दूँगी।" सुमन बोली।

आगंतुक ने कहा, "मैं वीरमपुर से आया हूँ। मेरा नाम शंकर है। सुना है, हमारे गाँव से राजाराम नाम का एक युवक शीतलप्रसाद जी की कन्या को देखने आया था। मैं एक शुभचिंतक होने के नाते यह ख़बर देने आया हूँ कि राजाराम चोरी के अपराध में दो वर्ष जेल की सज़ा काटकर आया है। ऐसे इन्सान से रिश्ता जोड़ते समय शीतलप्रसाद जी अपनी बेटी के भविष्य का ध्यान रखें।" यह कहकर शंकर बड़ी शीघ्रता से वहाँ से चला गया।

राजाराम के बारे में यह समाचार सुनकर सुमन पर वज्रपात सा होगया। क्या संसार में इतना धोखा है ? फिर भी वह गहरी लड़की थी। उसने इस बात की सच्चाई का पता लगाने के लिए घर पर ताला लगाया और किराये की गाड़ी लेकर वीरमपुर चली गयी।

राजाराम के मकान का पता लगाने में सुमन को कोई कठिनाई नहीं हुई। राजाराम सुमन को देखकर मुस्करा पड़ा। बोला, "अरे तुम! कहो, कैसे आना हुआ ?"

सुमन ने रोषभरे स्वर में कहा, "मैंने थोड़ी देर पहले आपके बारे में एक विचित्र समाचार सुना है। क्या आप चोरी के अपराध में दो साल की सज़ा काटकर आये हैं? सच बतायें!"

राजाराम ने तत्काल कोई उत्तर नहीं दिया। वह उसे घर में लेगया और बैठक में एक आसन दिखाकर बोला, "बैठो! लगता है तुम मुझसे बहुत ही अधिक नाराज़ हो! मैंने जेल की सज़ा क्यों काटी है, उसका कारण मैं तुम्हें बता देता हूँ। मेरी सारी बात शांति से सुनो!"

राजाराम बोला, "बचपन में ही अपने माता-पिता से वंचित होगया था। मेरी नानी ने

मुझे पाला। मैं उनके लाड़-प्यार में बिगड़ गया। मेरी पढ़ाई भी आधी-अधूरी हुई। बीस वर्ष की आयु होजाने के बाद भी मैं आजीविका का कोई साधन नहीं जुटा पाया। कोई काम-धंधा भी नहीं सीखा। मैं नानी से हठ कर रुपये ले जाता था और शहर में जाकर अंधाधुंध खर्च कर देता था।

एक बार मैं किराये की गाड़ी लेकर शहर जा रहा था कि मार्ग में एक अधेड़ उम्र की स्त्री ने गाड़ी रोकने का आग्रह किया। उसके हाथ में एक डिब्बा था।

वह औरत मुझसे बोली, "बेटा, क्या तुम शहर जारहे हो?"

"हाँ, जा तो रहा हूँ।" मैंने जवाब दिया।

"तब तो बेटा, मेरी छोटी-सी मदद कर दो! शहर में मेरा बेटा पढ़ता है। मैंने उसके लिए लड्डू बनाये थे। उसके पिता जानेवाले थे, पर वे अचानक बीमार पड़ गये। वे लड्डू मैंने इस डिब्बे में रख दिये हैं।" मेरे हाथ में डिब्बा देकर वह फिर बोली, "शहर में राम मंदिर के पास नारायण नाम का एक आदमी खड़ा होगा, तुम उसे यह डिब्बा दे देना।"

मेरी गाड़ी जैसे ही राम मंदिर के पास पहुँची, दो सिपाहियों ने पास आकर गाड़ी रोक दी। मैंने उनसे कहा,'मैं नहीं जानता कि आपने गाड़ी को क्यों रोका है? मेरे पास लड्डुओं का एक डिब्बा मात्र है और कुछ नहीं।' यह कहकर मैंने वह डिब्बा उन्हें दिखाया।

सिपाहियों ने डिब्बे का ढक्कन खोलकर लड्डुओं को बाहर निकाला। लड्डुओं के नीचे सोने के गहने थे।

"उन सिपाहियों ने लपक कर मेरी गरदन पकड़ ली और बोले,'हम यहाँ लड्डुओं के लिए इंतज़ार नहीं कर रहे हैं, बल्कि इसी चोरी के माल के लिए खड़े हैं। चलो, कोतवाल के पास।' यह कहकर सिपाहियों ने मुझे गाड़ी में से खींच लिया। असली चोर वहाँ से भाग गया।

"मैंने जो अपराध नहीं किया था, उसके लिए मुझे दो वर्ष की क़ैद हुई। यह खबर सुनकर मेरी नानी सदमे के कारण खाट से नहीं उठ सकी और दस दिन के अन्दर चल बसी।"

राजाराम ने अपनी कहानी समाप्त कर सुमन से कहा, "जेल में सज़ा काटते समय मैंने सब्जी

उगाने के सारे तरीक़े सीख लिये थे। रिहा होने के बाद यह काम ही मेरी आजीविका का साधन बन गया ।"

"आप जब डमरूगाँव में हमारे घर आये थे, तभी जेल वाली बात बता देते तो अच्छा रहता।" सुमन ने कहा ।

राजाराम हँसकर बोला, "यह कोई महान कार्य तो था नहीं कि मैं इसके बारे में चर्चा करता। फिर भी आप लोगों को वास्तविकता से अवगत कराने के लिए मैंने अपने गाँव के ही एक युवक शंकर को आपके घर भेजा था ।"

सुमन की शंका का समाधान होचुका था । एक ओर वह अपनी जल्दीबाजी पर पछता रही थी, दूसरी ओर उसे अपनी बुद्धिमत्ता पर विश्वास भी हुआ। वह शीघ्र ही अपने गाँव लौट आयी।

इस बीच शीतलप्रसाद भी घर लौट आया था उसने सुमन से पूछा, "बेटी, तुम कहाँ गयी थीं? अभी-अभी मुझे किसी ने बताया है कि राजाराम चोर है और दो साल की सज़ा काटकर आया है। अब तुम इस रिश्ते की बात भूल जाओ! भरतपुर के श्यामसिंह ने यह रिश्ता कुबूल कर लिया है। पर वे दहेज में पच्चीस हज़ार की माँग कर रहे हैं। उनके जैसे धनीमानी के लिए तो एक लाख भी कम है। तुम चिंता न करो! हम अपना मकान बेच देंगे ।"

"पिताजी, मकान बेचने की कोई आवश्यकता नहीं है। खूब धन-दौलत होते हुए भी दहेज माँगनेवाले ये लोग ही असली चोर हैं। मैंने राजाराम के मुँह से सारी कहानी सुन ली है। वह निर्दोष है। पर यह सज़ा उसके लिए हितकारी प्रमाणित हुई है। कारागार ने उसे बहुत कुछ सिखाया है। पहले वह अपना धन उड़ाता था, अब धन अर्जन करता है। वह श्रम का मूल्य पहचान गया है। एक प्रकार से दंड उसके लिए वरदान बन गया। मैं राजाराम के साथ ही विवाह करना चाहती हूँ।" सुमन ने अपने हृदय की कामना प्रकट कर दी ।

शीतलप्रसाद को अपनी बेटी के निर्णय में कोई दोष दिखाई नहीं दिया ।

नौकरी

धनगुप्त श्रीपुर का एक प्रसिद्ध जौहरी था। उसकी दूकान में श्रीधर नाम का एक युवक नौकरी में था। श्रीधर व्यापार-सम्बन्धी सभी कामों को बड़ी बुद्धिमत्ता एवं कुशलता के साथ करता था, हिसाब-किताब का काम भी वही देखता था। श्रीधर के कारण धनगुप्त को अपने व्यापार में अधिक लाभ मिला करता था। पर धनगुप्त ने श्रीधर के सहयोग से प्राप्त लाभ के बदले न तो कभी कोई इनाम दिया और न कभी उसकी वेतन-वृद्धि की।

श्रीधर के वेतन से उसके परिवार का भरण-पोषण तो किसी प्रकार हो जाता था, पर उसे अपनी पत्नी एवं बच्चों की अनेक छोटी-मोटी ज़रूरतों एवं इच्छाओं में कटौती करके चलना पड़ता था। घर में कोई नयी वस्तु लाने के लिए उसे बहुत कष्ट झेलना पड़ता। श्रीधर को हर माह यह आशा रहती कि शायद उसका मालिक उसका वेतन बढ़ा दे, पर हर बार उसे निराशा हाथ लगती। जब काफ़ी समय बीत गया तो उसने हताश होकर किसी अन्य जौहरी के यहाँ नौकरी पाने का प्रयत्न आरंभ कर दिया।

पास ही में कमलपुर नाम का एक कस्बा था। श्रीधर वहाँ गया और रत्नों के व्यापारी अनन्तगुप्त से मिला। उसने श्रीधर से व्यापार सम्बन्धी अनेक प्रश्न पूछे। श्रीधर के उत्तरों से अनन्तगुप्त को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने श्रीधर को अपने यहाँ नौकरी देने का निश्चय कर लिया। वह उसके बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के लिए श्रीपुर आया और धनगुप्त से मिला।

अनन्तगुप्त ने श्रीधर की कार्य-कुशलता के बारे में धनगुप्त से प्रश्न किया। धनगुप्त ने बताया कि श्रीधर न केवल ईमानदार है, बल्कि होशियार भी है। फिर कहा, "सच बात तो यह है कि मैंने इसी के कारण अपने व्यापार को इतना

विमला गार्गेय

बढ़ाया है ।"

इसके बाद अनन्तगुप्त ने श्रीधर को बुला कर उससे काम पर लग जाने के लिए कहा। पर बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि अनन्तगुप्त ने श्रीधर का जो वेतन निर्धारित किया, वह धनगुप्त से प्राप्त होनेवाले वेतन से कम था। श्रीधर ने उसके यहाँ नौकरी करने से इनकार कर दिया ।

इसके बाद श्रीधर ने कामाक्षीपुर के चंद्रगुप्त जौहरी के यहाँ नौकरी पाने का प्रयत्न किया । चंद्रगुप्त ने भी श्रीधर से व्यापार सम्बन्धी अनेक सवाल किये। श्रीधर के जवाब से वह भी बहुत संतुष्ट हुआ । उसने श्रीधर से कुछ समय बाद मिलने के लिए कहा ।

श्रीधर से हुई बातचीत के बाद चंद्रगुप्त धनगुप्त से मिला और श्रीधर के बारे में पूछताछ की। धनगुप्त ने चंद्रगुप्त से वही सब कहा जो इससे पहले अनन्तगुप्त से कहा था। उसने यहाँ तक कहा, "श्रीधर अपनी योग्यता के बल पर किसी दिन स्वयं रत्नों का व्यापार आरंभ कर सकता है ।"

चंद्रगुप्त ने श्रीधर को बुलाकर नौकरी पर लग जाने के लिए कहा। पर उसने जो वेतन निर्धारित किया, वह धनगुप्त से प्राप्त होनेवाले धन से कुछ ही अधिक था। साथ ही कामाक्षीपुर श्रीधर के गाँव से बहुत दूर था। समय और पैसा दोनों ही अधिक लगता । श्रीधर ने चंद्रगुप्त के यहाँ भी नौकरी करने से इनकार कर दिया ।

उन्हीं दिनों श्रीधर की मुलाक़ात धर्मपुर के विकासदत्त जौहरी से हुई। धर्मपुर श्रीपुर के निकट का ही गाँव था। विकासदत्त ने श्रीधर से अनेक सवाल किये। वह भी श्रीधर के उत्तरों से अत्यन्त संतुष्ट हुआ। इसके बाद विकासदत्त धर्मगुप्त के पास आया और श्रीधर के बारे में पूछताछ की।

धर्मगुप्त ने हँसकर कहा, "श्रीधर एकदम आलसी और निकम्मा है। वह भुलक्कड़ भी है। उसे नौकर रखकर मैं व्यापार में काफ़ी नुक़सान उठा चुका हूँ। आप उसके बारे में तहक़ीक़ात करने आये, इसलिए सही बात बता देना मैंने अपना फ़र्ज़ समझा ।"

"आपने सच्ची बात बताकर मेरा बड़ा उपकार किया है।" यह कहकर विकासदत्त वहाँ से चला गया है ।

जिस समय धनगुप्त और विकासदत्त की बातचीत हो रही थी, श्रीधर दूकान के भीतर वाले कमरे में था। उसने इन दोनों का वार्तालाप सुन लिया था। वह बाहर आया और दुखी होकर बोला, "मालिक, आपने ऐसा क्यों किया, मेरी समझ में नहीं आता। अभी तक तो आप मेरी प्रशंसा ही करते थे। मुझे एक अच्छी नौकरी का अवसर मिल रहा था, पर अब वह मेरे हाथ से निकल गया।"

धनगुप्त ने श्रीधर के कंधे थपथपाकर कहा, "तुमने इससे पहले और भी दो व्यापारियों के यहाँ नौकरी पाने का प्रयत्न किया था। उन लोगों ने तुम्हारा जो वेतन निर्धारित किया था, वह मुझसे प्राप्त वेतन से या तो कम था या बराबर-सा ही था। ये सारे समाचार मुझे मिलते रहे हैं। हाँ, यह विकासदत्त अवश्य ही तुम्हें कुछ अधिक वेतन देता।"

"पर आपने मेरी शिकायत करके मुझे इस नौकरी से वंचित क्यों किया?" श्रीधर ने पूछा।

"श्रीधर, तुम जबसे मेरे यहाँ काम पर लगे हो, तुमने मेरा हित ही हित किया है। जैसा तुमने मेरा शुभ चाहा है, वैसे ही मैं भी तुम्हारी भलाई की बात सोचता आ रहा हूँ। तुम बाल-बच्चोंवाले हो। यदि मैं तुम्हारे वेतन में कुछ वृद्धि कर भी देता, तब भी यह निश्चित था कि तुम उसमें से कुछ बचा नहीं सकते थे। एक गृहस्थ के लिए यह बड़ा कठिन होजाता है कि वह अपने आवश्यक-अनावश्यक खर्चों के बीच दीवार खड़ी कर सके या भविष्य की ख़ातिर वर्तमान खड़ी समस्या को नज़रन्दाज़ कर दे। तुम्हारी बेटी अब बड़ी हो रही है। दो एक साल में ही उसके विवाह की समस्या सामने आयेगी। उस समय के लिए मैं तुम्हारे नाम पर कुछ पैसा जमा करता रहा हूँ। इसके अलावा विकासदत्त तुम्हें जो वेतन देता, उतना मैं तुम्हें इसी माह से दिया करूँगा। अब तो संतुष्ट हो न?"

श्रीधर आज तक अपने मालिक को गलत समझता रहा, इसका उसे बहुत पश्चाताप हुआ। उसने धनगुप्त के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की और पहले से भी अधिक लगन के साथ उसके व्यापार में सहयोग देने लगा।

२

[सोने की घाटी राज्य में भूकंप आने के कारण उसके मुखद्वार का गोपुर टूटकर गिर पड़ा। तब राजा शूरसेन ने उस दुर्ग के वास्तुशिल्पी शिवराज के पौत्र जयराज को कारावास की सज़ा दी। पर जयराज सैनिकों के पहुँचने से पहले ही अपने चिर परिचित अरण्य में भाग गया। वहाँ उसे एक स्वर्ण प्रतिमा के दर्शन हुए, साथ ही एक अज्ञात कंठस्वर ने उसे निर्देश दिया कि वह जलप्रपात के पीछे की गुफा में प्रवेश करे। आगे पढ़िये ....]

जब एक अज्ञात कंठस्वर ने जयराज को यह आदेश दिया कि वह जलप्रपात के पीछे की गुफा में प्रवेश करके वहाँ की अधिष्ठात्री देवी से वर की याचना करे तो जयराज की प्रसन्नता की सीमा न रही। यह बात सर्वविदित थी कि आज तक जो लोग भी जलप्रपात को पार कर उसके पीछे विद्यमान गुफा से होकर उस पार गये थे, उनमें से आज तक कोई भी लौटकर नहीं आया था। जयराज के मन में क्षण भर को शंका आयी, पर तत्क्षण ही उसके हृदय में उस कंठस्वर की सत्यता के प्रति दृढ़ विश्वास जाग उठा और वह इस कार्य को संपन्न करने के लिए तत्पर होगया।

अब सर्वप्रथम प्रश्न स्वर्ण प्रतिमा की रक्षा का था। जयराज समझ गया कि इस मूर्ति की रक्षा के लिए किसी न किसी की सहायता आवश्यक है। गहराई से सोच-विचार करने के बाद उसने निर्णय लिया कि इस कार्य में राजा शूरसेन का सहयोग आवश्यक है। राजा से

मनोज दास

अधिक समर्थ भला और कौन हो सकता है?

धीरे-धीरे सुबह होगयी । सूर्य का आलोक चारों दिशाओं में फैल गया । सुवर्णिम प्रकाश से हरित वन का सौन्दर्य अलौकिक हो उठा । जयराज को ऐसा प्रतीत हुआ कि स्वर्ण प्रतिमा के अधरों पर मंदहास है और उस हास्य का कंपन भी

जयराज दुर्ग के द्वार की ओर चल पड़ा । जब जयराज दुर्ग के निकट पहुँचा, द्वारपाल प्रभात के स्वागत में तुरही बजा रहे थे । यह जागरण की सूचना थी । जयराज ने द्वारपालों के निकट जाकर कहा, "मुझे तुरन्त महाराज के दर्शन करने हैं ।"

"अरे वाह! अभी महाराज की नींद टूटी नहीं और तुम्हें दर्शनों की आवश्यकता आ पड़ी? क्या तुम कोई चक्रवर्ती सम्राट हो कि तुम्हारी इच्छा होते ही महाराज तुम्हें दर्शन दें? प्रातःकाल होने की सूचना देने के लिए हमने अभी तुरही बजायी है और अपने राज-कर्त्तव्य का पालन किया है । अब यह सूर्यदेव का काम है कि महाराज को निद्रा से जगाने के लिए शयनकक्ष की खिड़कियों पर अपनी किरणें प्रसारित करे ।" द्वारपालों ने कहा ।

जयराज ने उन लोगों की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया । वह उनकी आँख बचाकर दुर्ग द्वार को पारकर भीतर चला गया ।

"ठहरो!" दुर्ग रक्षकों ने गरजकर जयराज को रोकने की कोशिश की, लेकिन उसके मुखमंडल पर कोई ऐसी अलौकिक प्रभा थी कि वे घबराकर इधर-उधर हट गये । वे इस युवक को क्यों नहीं रोक सके, इसका कारण स्वयं उनकी समझ में भी नहीं आया ।

जयराज को भी दुर्गरक्षकों का यह आचरण विचित्र लगा । वह आगे बढ़ा और उसने एक सेवक से राजा शूरसेन के शयनकक्ष का पता कर लिया । शयनकक्ष के निकट जाकर जयराज ने पुकारा, "महाराज! उठिये, जागिये! मैं आपको एक अपूर्व शुभ समाचार देने आया हूँ ।"

जयराज की पुकार सुनकर एक सेवक ने क्रुद्ध होकर कहा, "अरे, युवक! क्या तुम्हें महाराज के यशस्वी नाम का परिचय नहीं? महाराज की विरुदावली में से कम से कम किसी एक विरुद का गान तो किया होता ।"

जयराज ने उस राजसेवक की बात पर कोई

ध्यान नहीं दिया और पुनः उच्च स्वर में चिल्लाकर बोला, "महाराज! महाराज!"

यह असमय की अप्रत्याशित पुकार सुनकर महाराज चौंक उठे और शैया से उठकर खुली खिड़की के पास पहुँचे। महाराज शूरसेन को खिड़की पर आया देख कुछ राजसेवक स्तम्भों की ओट में चले गये और कुछ लोग दीवार के पीछे छुप गये। सबके मन में एक ही भय था कि महाराज इस उद्दंड युवक के साथ निश्चय ही उन्हें भी दंड देंगे।

राजा शूरसेन दांत पीसते हुए कुछ देर खिड़की के पास खड़े रहे। इसके बाद अचानक ही उनके चेहरे का भाव बदल गया। उन्होंने उच्च स्वर में पुकार कर कहा, "कोई है? उस आगंतुक युवक को मेरे पास भेज दो!"

जयराज यह आदेश सुनते ही दौड़ पड़ा और कुछ ही क्षणों में राजा के शयनकक्ष के अंदर पहुँच गया। उन दोनों के बीच क्या वार्तालाप हुआ, यह किसी को पता न लगा। पर सबने देखा महाराज घबराये हुए से महल की सीढ़ियां उतर रहे हैं।

राजमहल के विशेष प्रहरी एवं राजसेवकों ने भी अब जयराज को पहचान लिया। कुछ लोग तो पहले से ही उसे जानते थे, कुछ ने दूसरों के दिये गये परिचय से पहचान लिया। पर वे जयराज के इस साहसिक कार्य का कारण न जान सके। सभी भौचक्के थे।

तभी एक मंत्री वहाँ पर आया। उसने सारा वृत्तान्त जानकर राजा से निवेदन किया, "परन्तु महाराज ... चण्डप्रचण्ड शूरसेन महाराज! ..." वह अभी आगे कुछ कहना ही चाहता था कि राजा ने खीजकर कहा, "अरे मूर्खो! तुम लोग बकवास बंद करो और चुपचाप मेरे पीछे चले आओ!"
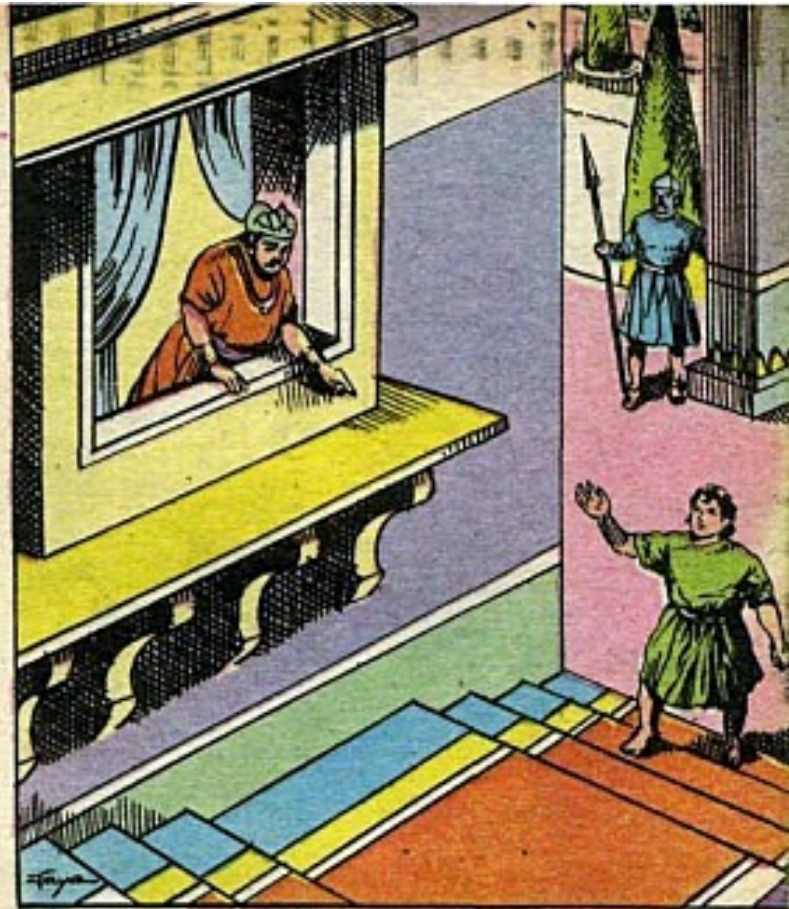
महाराज शूरसेन ने अश्वारूढ़ होने का विचार भी नहीं किया। उन्हें एक-एक क्षण भारी पड़ रहा था। जयराज आगे-आगे जा रहा था और राजा शूरसेन पैदल ही उसके पीछे-पीछे जा रहे थे।

चलते-चलते जयराज ने राजा से पूछा, "महाराज! आप यदा-कदा अरण्य की यात्रा क्यों नहीं करते?"

"अरे मूढ़ युवक! मुझे अरण्य में प्रवेश करने

की क्या आवश्यकता है? राजाओं का निवास महलों में होता है, जंगलों में नहीं ।" राजा शूरसेन ने कहा ।

"महाराज! अरण्य में वृक्षों के नीचे दौड़ने का सुख अपूर्व है । पशुओं के स्वच्छन्द विहार को देखना—यह सब अपार आनन्द देता है ।" जयराज ने वन-वैभव का वर्णन करते हुए कहा ।

"स्वच्छन्द विहार? हुअ! मैं हर किसी का स्वच्छन्द विहार हर सकता हूँ । मुझसे बढ़कर स्वच्छन्द विहारी और कौन होगा? पर, युवक! यह तो बताओ कि वन में प्रवेश करके वहाँ घूमने का विचार तुम्हारे दिमाग में कहाँ से आया?" राजा शूरसेन ने पूछा ।

"महाराज! वन-विहार के अनेक लाभ हैं । आप सोचिये अगर मैं वन में न प्रवेश करता तो उस स्वर्ण प्रतिमा के दर्शन कैसे होते?" यह कहकर जयराज ने कुछ दूर स्थित उस प्रतिमा की ओर संकेत किया ।

राजा शूरसेन अपने दोनों हाथ कमर पर रखकर जयराज के द्वारा निर्दिष्ट दिशा में उस स्वर्ण प्रतिमा को देखने का प्रयास करने लगे । जब उन्हें कुछ न दिखाई दिया तो उनके चेहरे पर परिहास की रेखाएं खिंच गयीं । उन्होंने जयराज की ओर मुड़कर कहा, "पागल युवक! क्या तुम मुझे परिहास के लिए यहाँ लाये हो? तुम जिस स्थान की ओर संकेत कर रहे हो, वहाँ तो मुझे शिलाओं के अलावा और कुछ भी नज़र नहीं आ रहा है ।"

राजा की बात सुनकर जयराज स्तंभित हो उठा । वह बोला, "चण्ड प्रचण्ड महाराज शूरसेन! सूर्य-किरणों में चमचमाती हुई स्वर्णप्रतिमा क्या सचमुच आपको नहीं दिखाई दे रही है ? यदि यह सच है तो इससे बढ़कर आश्चर्य की बात और क्या हो सकती है?"

"सच हि मुझे कोई प्रतिमा दिखाई नहीं दे रही । बिलकुल ही नहीं ।" राजा शूरसेन ने व्यग्र होकर कहा ।

"महाराज! ऐसा क्यों हो रहा है?" जयराज ने पूछा ।

"इसलिए, क्योंकि वास्तव में वहाँ स्वर्णप्रतिमा नहीं है । अरे पागल जंगली युवक! तुमने मेरी निद्रा भंग की है और तुम मुझे इतनी दूर पैदल चलाकर लाये हो । मैं कैसा मधुर स्वप्न देख रहा

था कि एक वर के रूप में मुझे राजाया जा रहा है। तुमने मेरे सुन्दर सपने को तोड़ने का अपराध किया है। अब तुम मृत्यु दंड के भागी बनोगे।" राजा ने क्रोधित होकर कहा।

जयराज थोड़ा भी विचलित न हुआ। उसने साहसभरे स्वर में कहा, "महाराज! आप तो अनेक बार स्वप्न में वर बने होंगे और आपने अनेक लोगों को मृत्युदंड देकर मारा भी होगा।"

पर राजा शूरसेन जयराज की बातों को सुनने की स्थिति में नहीं थे। उन्होंने पृथ्वी पर पैर पटके फिर अपने जूतों की तरफ़ देखकर कहा, शयनकक्ष से निकलते समय हड़बड़ी में मैंने जूते भी बदलकर पहन लिये हैं। हर राजा का कर्त्तव्य होता है निद्रा से उठकर कंघ से मूंछें संवारना—वह भी मैं भूल गया हूँ।"

जयराज महाराज की इन अटपटी बातों को सुनकर आश्चर्य से उन्हें ताक रहा था। महाराज शूरसेन क्रुद्ध थे और क्षुब्ध भी। उनके मुँह से बड़ी ज़ोर की हुंकार निकली। उस गर्जन को सुनकर पहाड़ी टोलों की ओट में छुपे सियार ज़ोर से चिल्ला उठे।

उस गर्जन और उन चिल्लाहटों को सुनकर प्रधान मंत्री मार्तण्ड, महाज्ञानियों की सभा के पाँचों सदस्य सशंकित हो वहाँ दौड़े आये। उन्हें भय होगया कि महाराज किसी ख़तरे में फँस गये हैं।

राजा शूरसेन ने उन सबको आँखें तरेर कर देखा। तब महाज्ञानी विश्वेश्वर ने रुद्ध कंठ से पुकारा, "महाराज!"

दूसरा महाज्ञानी घबराये हुए दीन स्वर में बोला, "चण्ड प्रचण्ड प्रभु!"

मंत्री एवं महाज्ञानी लोग—किसी की समझ में न आया कि बात क्या है? उन्हें तो बस इतना ही मालूम था कि एक धृष्ट युवक सुबह ही सुबह महल में आया था और उसकी पुकार सुनकर महाराज उसके पीछे इस वन में भग्नावशेषों के पास पैदल ही चले आये हैं।

इसी बीच राजा को बड़ी ज़ोर से छींक आगयी। पाँचों महाज्ञानी भयभीत हो राजा की ओर देखने लगे।

राजा भौंहें सिकोड़कर उनकी ओर दृष्टि फेंककर बोले, "मुझे लगता है कि यह

बड़ा उल्लू दिखाई दे रहा है ।''

''उल्लू! नहीं, नहीं! वहाँ तो हमें एक बहुत बड़ी मकड़ी दिखाई दे रही है । इतनी बड़ी मकड़ी को मैंने इससे पहले कभी नहीं देखा ।'' महाज्ञानी विश्वेश्वर ने कहा ।

जयराज खीज कर बोला, ''बहुत समय पूर्व महाराज शुद्धोधन के काल में उन्हीं के द्वारा निर्मित जो स्वर्ण प्रतिमा पहाड़ी चट्टानों के नीचे दब गयी थी, अब वह प्रकट होगयी है । क्या आप सब लोग उसे नहीं देख पारहे हैं ?''

''क्या कहा? कई पीढ़ी पहले भूकंप के कारण पहाड़ी शिलाओं के बीच दबी वह स्वर्णप्रतिमा प्रकट होगयी है और अब सामने है? निश्चय ही इस युवक को मतिभ्रम होगया है, यह पगला गया है ।'' एक दूसरे महाज्ञानी ने कहा ।

उसके समर्थन में अन्य सब महाज्ञानियों ने सिर हिलाये । यह सारा वार्तालाप सुनकर राजा शूरसेन का पारा और भी चढ़ गया । उन्होंने ताली बजाकर आदेश दिया, ''इस धूर्त युवक को नीचे की घाटी में ढकेल दिया जाये ।''

राजा शूरसेन का आदेश सुनकर जयराज भागने को हुआ पर इस बीच राजा शूरसेन ने उसका दांयां हाथ कस कर पकड़ लिया । दो महाज्ञानियों ने जयराज के पैरों को पकड़ लिया और एक ने उसकी गरदन पकड़ ली ।

अब सब मिलकर जयराज को खाई की तरफ़ उठाकर ले जाने लगे । तभी स्वर्ण प्रतिमा की दिशा से मधुर स्वर में संगीत सुनाई दिया ।

प्रातःकालीन हवा मुझ जैसे महान यशस्वी राजवंशी राजा के लिए हानिकारक है ।'' फिर जयराज की ओर इशारा कर बोले, ''यह दुष्ट युवक मुझे नचा रहा है ।''

''मैं नचा रहा हूँ और वह भी महाराज को?'' यह कहकर विस्मयविमूढ़ हुआ जयराज चुप होगया, फिर महाज्ञानियों से बोला, ''महाजनो, आप महाराज की शंका दूर कर दीजिए । क्या आप लोग ठीक सामने उस स्वर्णप्रतिमा को नहीं देख रहे हैं?''

जयराज की बात सुनकर पाचों महाज्ञानियों ने बड़ी आतुरता से उस दिशा में देखा ।

मंत्री मार्तण्ड ने कहा, ''युवक! तुम जिस दिशा में संकेत कर रहे हो, वहाँ मुझे एक बहुत

जिन दो महाज्ञानियों ने जयराज के पैर पकड़ रखे थे, उन्होंने अपनी पकड़ ढीली कर दी और चिल्लाकर कहा, "वाह! अद्‌भुत संगीत है। अद्‌भुत है।"

राजा शूरसेन इस बात पर भी क्रोधित हो उठे और बोले, "ठहरो! इस अद्‌भुत संगीत के बारे में सर्वप्रथम मैं कुछ कहूँगा। यह संगीत शक्कर से बने लड्डू जैसा मधुर है। एक लड्डू के सदृश नहीं, सैकड़ों हज़ारों लड्डुओं के सदृश मधुर।"

स्वर्णप्रतिमा अब सबको साफ़ दिखाई देने लगी। अब सबने जयराज को छोड़ दिया और सब के सब स्वर्ण प्रतिमा की ओर देखने लगे। तब महाज्ञानियों में से विश्वेश्वर ने कहा, "चण्ड प्रचण्ड प्रभु! उस प्रतिमा के सौंदर्य की तुलना इंद्रधनुष से की जा सकती है।"

अभी तक राजा शूरसेन ने जयराज का हाथ नहीं छोड़ा था। अब उन्होंने जयराज का हाथ छोड़कर कहा, "अरे युवक! इस प्रतिमा के सौंदर्य का क्या बखान किया जाये? मैंने तुम्हारा हाथ पकड़ लिया, इसीलिए मुझे यह स्वर्ण प्रतिमा दिखाई दी। तुम्हारी जितनी भी प्रशंसा की जाये, कम है। तुम बड़े प्रतिभाशाली युवक हो!" यह कहकर राजा शूरसेन ने जयराज को गले से लगा लिया।

जयराज प्रसन्न होकर बोला, "चण्ड प्रचण्ड प्रभु! इस प्रतिमा को देखते ही आप कितने सुन्दर होगये हैं। अहा, आपका रूप अनोखा हो उठा है।"

"ओह, ऐसी बात है। मेरा दर्पण कहाँ है, जिसमें मैं प्रतिदिन अपना चेहरा देखता हूँ।" यह कहकर राजा शूरसेन ने महाज्ञानियों से कहा, "तुममें से कोई एक मेरे महल में जाओ और मेरा दर्पण ले आओ!"

पर किसी का भी ध्यान राजा या अन्य किसी की बातों में नहीं था। सबकी स्थिति विचित्र थी। सब लोग स्वर्णप्रतिमा की ओर ताकते हुए तन्मय खड़े थे।

"अरे तुम लोगोंने क्या मेरा आदेश नहीं सुना? कहाँ है मेरा दर्पण! शीघ्र ले आओ!" राजा ने पुनः आदेश दिया।

(क्रमशः)

राजधर्म

दृढ़व्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आये, पेड़ पर से शव उतार कर कंधे पर डाला और हमेशा की तरह चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगे। तब शव में वास करनेवाले बेताल ने पूछा, "इस भयानक श्मशान में अर्द्धरात्रि के समय आप जो श्रम उठा रहे हैं, उसे देखकर मुझे लगता है कि किसी अकारण द्वेष से प्रेरित होकर आपको कोई इस काम में प्रवृत्त होने के लिए विवश कर रहा है। कभी-कभी मित्रों, बन्धुओं, सम्बन्धियों और यहाँ तक कि शत्रुओं के सम्बन्धों में भी कुछ अप्रत्याशित विलक्षणताएं पैदा हो जाती हैं। इसके उदाहरण के रूप में मैं आपको ऐसे दो राज परिवारों की कहानी सुनाता हूँ, जो पहले मित्र थे, फिर शत्रु बने और अन्त में सम्बन्धी बन गये। श्रम को भुलाने के लिए आप यह कहानी सुनिये !"

बेताल कहानी सुनाने लगाः एक समय की बात है, चंद्रगिरि राज्य पर महाराज विष्णुगोप का

बेताल कथा

शासन था । उनके इकलौते पुत्र का नाम था कृष्णगोप । राजकुमार कृष्णगोप शुरू से ही राजनीति और राजधर्म की सूक्ष्मताओं को समझता था। वह सुन्दर, सहृदय और वीर भी था। जब राजा विष्णुगोप वृद्ध होगये तो उन्होंने कृष्णगोप का राज्याभिषेक कर स्वयं विश्राम ले लिया । लिया ।

नवयुवक राजा कृष्णगोप बड़ी कुशलता से राजकार्य चलाने लगा । वह शिक्षित था, गुणी था, उदार था। वह प्रजा के हित को सदा ध्यान में रखता था और स्वयं कुछ ऐसे विलक्षण कार्य करना चाहता था जिससे वह न केवल यशस्वी बने, बल्कि राज्य की सुन्दरता में भी चार चाँद लगा दे। उसमें एक विशेषता यह भी थी कि स्वयं समर्थ होने पर भी वह पिता, मंत्री एवं पुरोहितों से परामर्श लेना न भूलता था ।

एक बार कृष्णगोप शिकार खेलने के लिए निकटवर्ती वन में गया। वह शिकार की खोज में बड़ी दूर निकल गया। यहाँ तक कि वह चंद्रगिरि की सीमा के पार चला गया। कृष्णगोप इस स्थल की प्राकृतिक रमणीयता पर मुग्ध हो उठा। चारों ओर की अपूर्व सुन्दरता से उसका हृदय आनन्द से भर गया। पर्वत के ऊँचे शिखर, तलहटी में कलकल निनाद करती स्वच्छ नदी, चारों तरफ़ फसलों से भरे खेत, हरे-भरे उद्यान और क्रीड़ास्थल ।

कृष्णगोप ने उस प्रदेश के बारे में पूछताछ की तो उसे पता चला कि वह इतना सुन्दर इलाका उसके चंद्रगिरि राज्य में नहीं है। वह पड़ोसी राज्य नागांचल के अन्तर्गत है । कृष्णगोप इस इतने मोहक प्रदेश को अपने राज्य चंद्रगिरि में मिलाने के लिए अधीर हो उठा । उसके हृदय में एक विचार आया और वह एक दृढ़ निश्चय के रूप में बदल गया । कृष्णगोप शिकार खेले बिना ही राजधानी लौट आया ।

राजा कृष्णगोप ने गुप्त रूप से सेना को एकत्रित किया और एक सप्ताह बाद अचानक नागांचल पर आक्रमण कर दिया । यह हमला इतना अप्रत्याशित था कि नागांचल के राजा वीरमणि कृष्णगोप का सामना नहीं कर सके और उन्हें पराजय का मुँह देखना पड़ा। राजा कृष्णगोप पूरे नागांचल राज्य पर अधिकार करने का इच्छुक

नहीं था, इसलिए उसने अपने इच्छित प्रदेशों पर अधिकार करने के बाद अपनी सेना को लौटा लिया और प्रसन्नतापूर्वक राजधानी में आगया।

राजा वीरमणि को इस पराजय से गहरा मानसिक धक्का लगा और वे कुछ सोच-विचार न कर सके। फिर भी राजा वीरमणि की रगों में क्षत्रिय खून दौड़ रहा था। उन्होंने जल्दी ही अपने को संभाल लिया और भावी कार्यक्रम के बारे में कुछ निर्णय करने के लिए अपने मंत्रियों को आमंत्रित किया।

प्रधान मंत्री विश्वप्रभ ने कहा, "महाराज! चंद्रगिरि का राज्य सैनिक दृष्टि से हम से कहीं अधिक शक्तिशाली है। हमें उनसे अधिक सैनिक बल का संगठन करना चाहिए और इसके बाद अपने खोये हुए प्रदेशों को पुनः प्राप्त करने के लिए उन पर हमला करना चाहिए।"

अन्य मंत्रियों ने भी राजा को यही परामर्श दिया।

राजा वीरमणि अपने मंत्रियों, सेनापतियों के सहयोग से अपनी सेना का पुनर्गठन करने लगे।

कुछ समय बीत गया। राजा वीरमणि के अंजना नाम की एक सुंदर कन्या थी। राजकुमारी अंजना अब विवाह योग्य हो चुकी थी। राजपुरोहितों ने राजकुमारी की जन्म कुंडली देखकर राजा को परामर्श दिया कि ग्रह नक्षत्रों को देखते हुए इसी वर्ष राजकुमारी के विवाह का शुभ योग है। नांगाचल राजाओं के वंश में राजकुमारियों का विवाह स्वयंवर-पद्धति से संपन्न
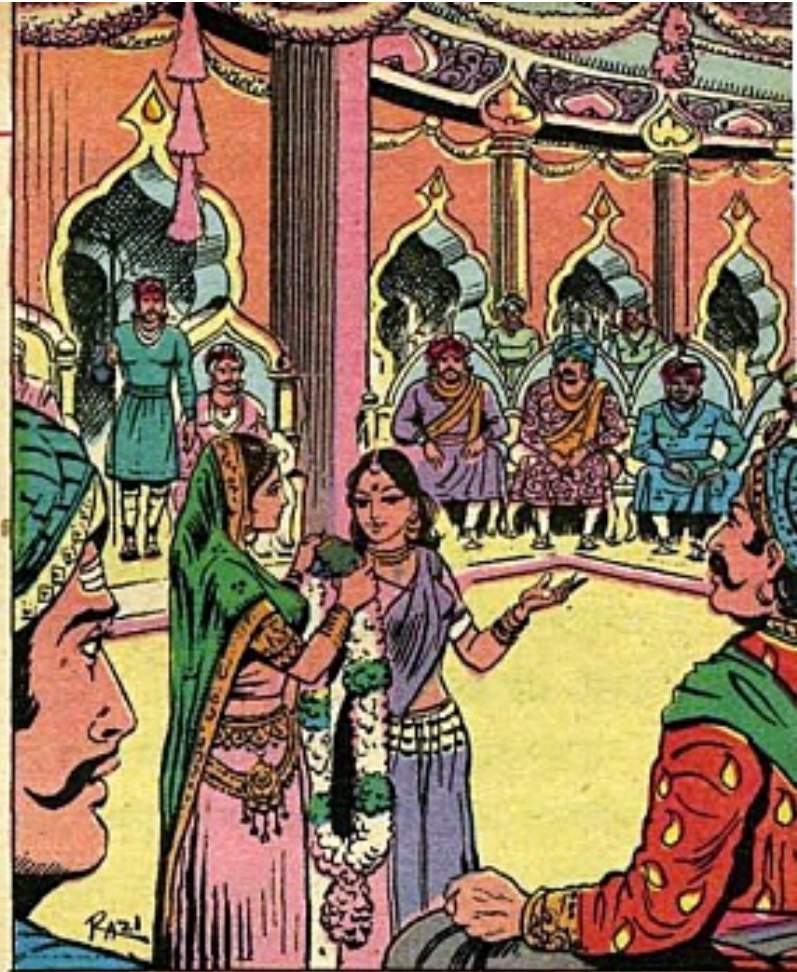
किया जाता था।

राजा वीरमणि ने स्वयंवर का आयोजन आरंभ कर दिया। सारा प्रबन्ध होजाने के बाद निमंत्रण-पत्र तैयार किये गये। राज्य के वरिष्ठ अधिकारी अजितसेन ने वे सारे पत्र राजा को दिखाये। राजा वीरमणि ने निमंत्रित राजाओं और राजकुमारों की सूची देखकर पूछा, "अजितसेन! इसमें चंद्रगिरि के राजा कृष्णगोप का नाम नहीं है, क्या कारण है?"

राजा के मुँह से शत्रु राजा कृष्णगोप का नाम सुनकर अजितसेन एवं अन्य सारे अधिकारी आश्चर्य चकित होगये। उन्होंने राजाज्ञा से राजा कृष्णगोप को भी स्वयंवर का निमंत्रण भिजवा दिया।

स्वयंवर का दिन आया। सारे राजा एवं राजकुमार अपने-अपने आसनों पर बैठ गये। स्वयंवर-सभा में राजा कृष्णगोप को उपस्थित देखकर अन्य राजाओं को भी विस्मय हुआ।

राजकुमारी अंजना अपने हाथ में वरमाला लिये आगे-आगे चलने लगी। राजकुमारी के साथ एक विशिष्ट सखि सब राजाओं एवं राजकुमारों का परिचय, गुण-ऐश्वर्य एवं प्रभाव बताती हुई चल रही थी।

राजकुमारी सबके परिचय को मौन भाव से सुनती हुई अंत में चंद्रगिरि के नवयुवक राजा कृष्णगोप के निकट पहुँची और उसके गले में वरमाला पहना दी।

राजकुमारी अंजना के इस कृत्य को देखकर वहाँ उपस्थित सारे राजा निश्चेष्ट रह गये। सब आपस में तर्क-वितर्क करने लगे और राजकुमारी के इस व्यवहार को शंका की दृष्टि से देखने लगे। एक शत्रु राजा को वरण करने का क्या अर्थ है? कृष्णगोप तो राज्य विस्तार करने के लिए मित्र को भी शत्रु बना सकता है। अवश्य ही इसमें कोई रहस्य होना चाहिए।

पर राजा वीरमणि ने किसी की भी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। वे सिंहासन से उतरे और कृष्णगोप के साथ अपनी पुत्री अंजना का विवाह संपन्न कर दिया। राजा वीरमणि ने अपने जामाता का समुचित आदर सत्कार किया और उसे मूल्यवान उपहार देकर बेटी के साथ विदा किया।

पाँच-छह माह व्यतीत होगये। एक दिन राजा वीरमणि ने अपने मंत्रियों एवं सेनाध्यक्षों को बुलवाकर पूछा, "हमारी सेना भलीभांति संगठित
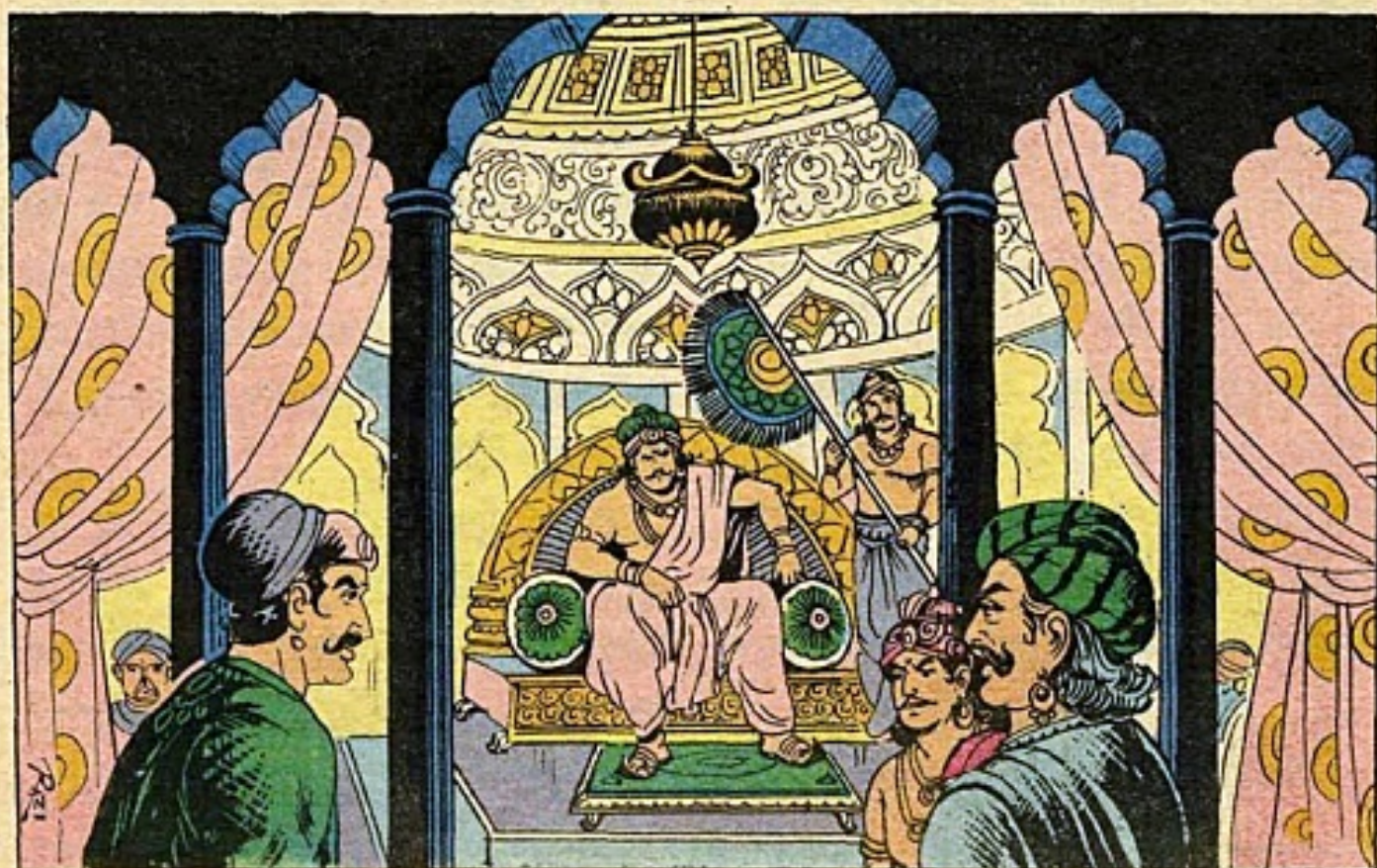
होगयी है न ?"

"महाराज! सेना का संगठन-कार्य पूरा हो चुका है, पर अब सेना-संगठन की आवश्यकता ही क्या है?" सबने पूछा ।

"आवश्यकता क्यों नहीं है? हमने नागांचल के जो प्रदेश खो दिये थे, उन्हें चंद्रगिरि के राजा से पुनः प्राप्त करना है। हमें अपने राज्य की सीमाओं को पहले की भाँति ही निरापद और शत्रुविहीन करना है ।" राजा वीरमणि ने उत्तर दिया ।

सबने बिना किसी प्रतिवाद के संगठित सेना को युद्ध के लिए तैयार होने की राजाज्ञा सुना दी।

जब यह समाचार गुप्तचरों के द्वारा राजा कृष्णगोप के पास पहुँचा तो उसने अपने श्वसुर राजा वीरमणि के पास यह संदेश भेजा कि उसने नागांचल के जिन प्रदेशों पर पहले अधिकार कर लिया था, वहाँ से उसने अपनी सेना को हटा लिया है ।

अपने जामाता कृष्णगोप के द्वारा भेजे गये इस संदेश को सुनकर राजा वीरमणि अत्यन्त प्रसन्न हुए। नागांचल राज्य में खुशी की लहर दौड़ गयी और खोये हुए सुन्दर प्रदेशों को पुनः पाने की खुशी में प्रजा ने आनन्दोत्सव मनाया ।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर विक्रमार्क से पूछा, "राजन, शत्रुराजा को अपनी पुत्री के स्वयंवर में निमंत्रित करने में राजा वीरमणि का क्या उद्देश हो सकता है? उसे निमंत्रित करके क्या उन्हें अपमान अनुभव नहीं हुआ? राजकुमारी अंजना ने अनेक राजाओं एवं राजकुमारों की उपेक्षा करके अपने पिता के शत्रु का वरण किया। क्या यह एक क्षत्रिय राजकुमरी का धर्म है ? और
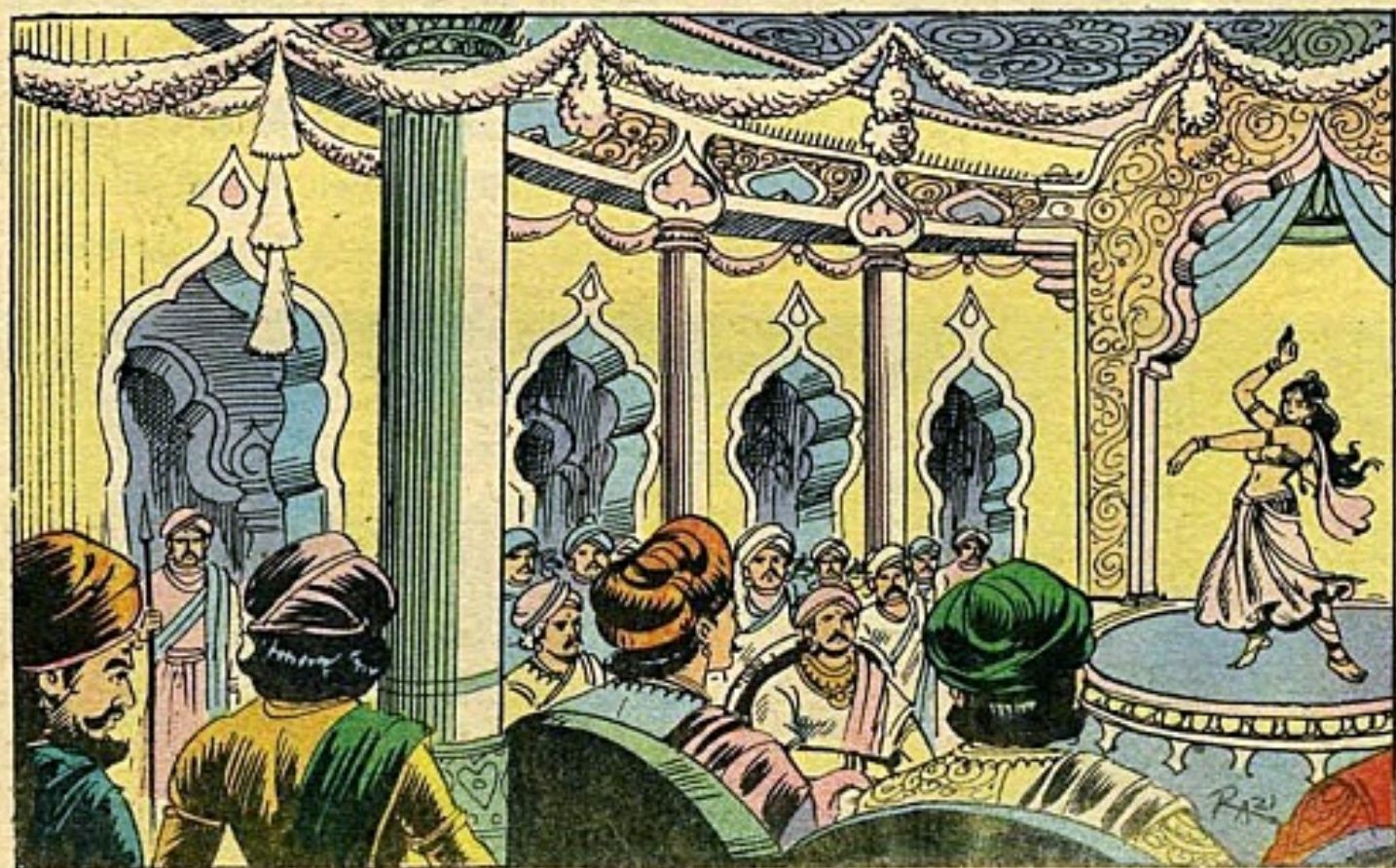
अन्त में, जब राजा वीरमणि को पुरानी बातें भूल जानी चाहिए थीं, तब उन्होंने चंद्रगिरि राज्य के अपने जामाता राजा पर चढ़ाई की तैयारी क्यों की? और राजा कृष्णगोप ने अपने जीते हुए प्रदेशों को युद्ध के बिना ही नागांचल को वापस क्यों कर दिया? क्या वह अपने श्वसुर के सैनिक बल को देखकर भयभीत होगया? आप इन संदेहों का समाधान यदि जानकर भी न करेंगे तो आपका सिर फटकर टुकड़े-टुकड़े- हो जायेगा।"

तब विक्रमार्क ने उत्तर दिया, "स्वयंवर पद्धति की मर्यादा ही यह है कि उसमें राजकुमारी को वर-चयन की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। वह वर मित्र भी हो सकता है और शत्रु भी। यदि राजा वीरमणि शत्रु-मित्र का भेद कर कुछ राजाओं को निमंत्रण न भेजते, तो वर के चुनाव का निर्णय राजकुमारी का न होकर राजा का ही हो जाता। राजा वीरमणि राजधर्म, क्षत्रियधर्म को समझते थे। इसलिए उन्होंने कृष्णगोप के नाम भी निमंत्रण भेजा। राजकुमारी अंजना ने भी अपने पिता के मन्तव्य को अच्छी तरह समझ लिया और स्वयंवर में अपनी स्वतंत्र इच्छा के अधिकार का उपयोग कर अत्यन्त सुयोग्य राजा कृष्णगोप को ही अपना पति चुन लिया। जो शत्रु बन गया था, वह मित्र भी बन सकता है। राजा वीरमणि का सेना को युद्ध की तैयारी का आदेश देना भी राजोजित कार्य है। एक राजा होने के नाते उनका यह दायित्व है कि वे नागांचल राज्य के खोये हुए प्रदेशों को पुनः प्राप्त करें। ऐसा न करने पर वे राजधर्म का निर्वाह करनेवाले राजा नहीं कहला सकते। राज्य और प्रजा राजवंश एवं सम्बन्धों से अधिक महत्व रखते हैं। कृष्णगोप ने भी अधिकार में आये हुए प्रदेशों का त्याग युद्ध के बिना ही कर दिया, तो यह भय से प्रेरित होकर नहीं। राजकुमारी अंजना राजा वीरमणि की इकलौती पुत्री थी। ऐसी स्थिति में चंद्रगिरि और नागांचल के राज्य को कभी न कभी एक होना ही है और कृष्णगोप ही इन दोनों राज्यों का राजा होगा, यह सोचकर कृष्णगोप ने अपने ही दोनों देशों की प्रजा का हनन करना उचित न समझा।"

राजा के इसप्रकार मौन होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य होकर पुनः पेड़ पर जा बैठा।

(कल्पित)
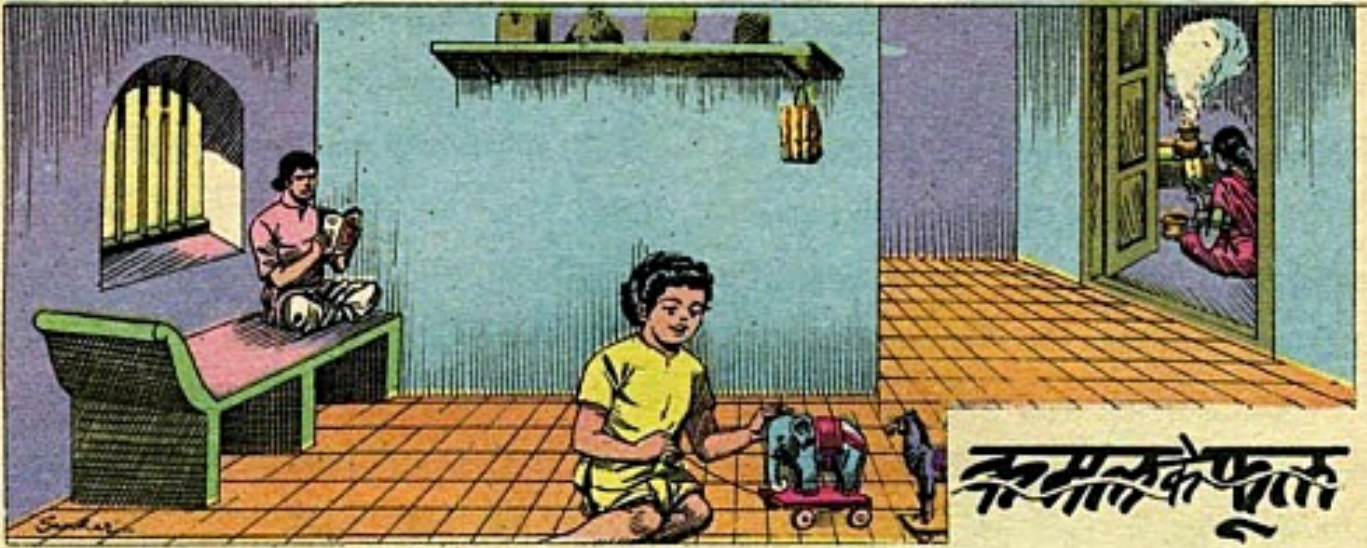
नंदलाल एक मध्यवित्त परिवार का गृहस्थ था। उसे बचपन से ही अच्छी किताबें पढ़ने का बहुत शौक़ था। जब कोई अच्छी किताब उसके हाथ में आजाती, वह उसे पूरा करके ही उठता था। पढ़ते समय वह इतना तन्मय होजाता कि उसे अपने परिसर का भी ध्यान न रहता। अगर कोई उसे बीच में पुकारता तो वह क्षुब्ध हो जाता था।

एक दिन की बात है। नन्दलाल शरच्चंद्र के उपन्यास में डूबा हुआ था, विप्रदास की कहानी चल रही थी। सारे पात्र इतने जीवन्त थे कि बाहर का कुछ होश ही नहीं रह गया था। ऐसी तन्मय स्थिति में रसोई से नन्दलाल पत्नी शर्मीला पुकार उठी, "अगर आप केशू को थोड़ा संभाल लेते तो मैं अपना काम पूरा कर लेती।"

नन्दलाल का पुत्र केशव तीन वर्ष का था। नन्दलाल ने उसे लाकर उसके सामने कुछ खिलौने डाल दिये। बालक खिलौनों में रम गया और नन्दलाल निश्चिन्त होकर किताब पढ़ने लगा।

उस समय बाहर का वातावरण एकदम सुहावना और आह्लादकारी था। अचानक आकाश में बादल छा गये, बिजली चमकने लगी। मेघों ने गरजना आरंभ कर दिया। केशव उस गर्जन से घबरा गया और दम घोटकर रोने लगा। बच्चे का रोना सुनकर शर्मीला रसोई से भागी हुई आयी और उसे गोद में उठाकर बहलाने लगी। मां की चुमकार से भी बच्चा चुप न हुआ और बराबर रोता ही रहा।

"बिजली की कड़क और मेघों की गरज से केशु डर गया है। यह कोई समय है वृष्टि का?" कहकर नन्दलाल ने मौसम की निन्दा की और फिर किताब में रम गया।

शर्मीला केशव को शांत न कर पायी। वह कुछ खीझकर पति से बोली, "आप क्या कुछ देर

के लिए भी किताब को ताक में नहीं रख सकते। ज़रा बच्चो को पिछवाड़े में ले जाइये, यह बहल जायेगा। इस बीच मैं रसोई पूरा कर देती हूँ।"

नन्दलाल केशव को पिछवाड़े में ले गया। वहाँ पहुँचते ही केशव ने रोना बंद कर दिया और ताली बजाकर चिल्ला उठ, "बाबूजी! फूल!"

नन्दलाल ने उस तरफ़ आँखें घुमायीं, जिस तरफ केशव देख रहा था। सामने लाल कमल के फूल खिले हुए थे, जिन्हें देखकर केशव इतना खुश हो उठा था। सचमुच ही अद्‌भुत दृश्य था। ऐसे समय ऐसे सुन्दर फूल! नन्दलाल को हर्ष के साथ-साथ विस्मय भी हुआ। इसके बाद नन्दलाल ने अपनी पत्नी को पुकार, "शर्मीला! ज़रा यहाँ आओ तो! देखो तो सही!"

शर्मीला ने आकर पूछा, "क्या बात है? ऐसा क्या दिख गया आपको?"

नन्दलाल ने खिले हुए लाल कमलों की ओर इशारा करके कहा, "शर्मीला! इन फूलों को इस तरह खिलते हुए तो मैंने कभी नहीं देखा। इतने बड़े, सुन्दर, लाल फूल! ये कहाँ से आगये?"

शर्मीला ने लाल कमलों की ओर देखकर कहा, "मुझे तो लगता है, बिजली चमकने और मेघों के गरजने से ये फूल खिल गये हैं।" यह कहकर वह फिर रसोई में चली गयी।

नन्दलाल कभी अपने बेटे केशव का मुँह देखता और कभी उन खिले हुए लाल कमलों को। उसके आश्चर्य का ठिकाना न था।

यह प्रकृति माता भी विलक्षण है! आधी-तूफ़ान, बिजली पानी एवं गर्जन से जहाँ यह एक ओर धरती-आकाश को थर्रा देती है तो दूसरी ओर इन फूलों में अपनी हँसी बिखेरकर उन्हें पुचकार भी देती है।

नन्दलाल की समझ में न आया कि वह बेटे को रुला देनेवाले मेघों की निन्दा करे या उसे हँसा देनेवाले इन लाल कमलों की प्रशंसा करे। निन्दा, स्तुति दोनों से बढ़कर जो बात थी, वह यह थी कि स्वयं वह एक छोटे से बच्चे की तरह उन फूलों को देखकर उल्लसित हो उठा था और केशू की भाँति ही किलकारी मारकर ताली बजाना चाहता था।

कोचिन के मंदिर

भारत के इतिहास ने अनेक संदर्भों में केरल के कोचिन प्रदेश को बहुत प्रभावित किया है। विश्व के प्राचीन यहूदी केंद्रों में से एक अत्यन्त प्राचीन केंद्र की स्थापना यहीं पर हुई थी। यहाँ का यहूदी मंदिर अपने अन्दर कई शताब्दियों का इतिहास संजोये हुए है। नीले, सफ़ेद चीनी टीकरों से इसकी छत का निर्माण हुआ है।
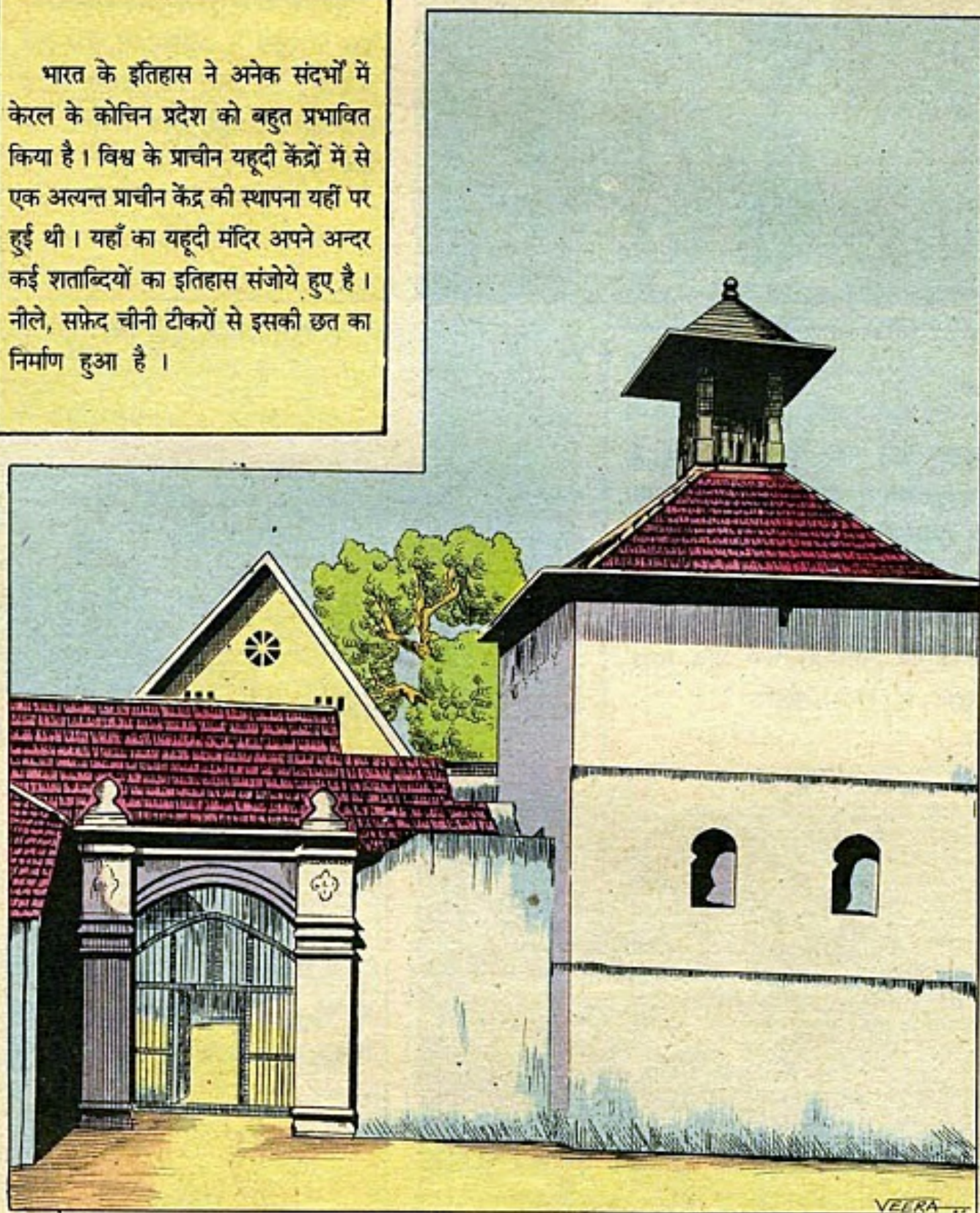
पुर्तगाल के लोग सबसे पहले वास्कोडिगामा के नेतृत्व में कालिकट से होकर यहाँ आये थे। उस समय वास्कोडिगामा ने यहाँ के निवासियों के साथ अनेक हिंसात्मक कार्य किये थे।

यहाँ का संत फ्रांसिस गिरजाघर भारत का पहला ईसाई मंदिर है। पुर्तगालियों के शासन-काल में यह कैथोलिक चर्च के रूप में, डचवालों के शासनकाल में प्रोटेस्टेंट चर्च के रूप में, ब्रिटिश शासन काल में आंग्लिकन चर्च के रूप में प्रसिद्ध रहा। इस समय यह गिरजाघर 'चर्च ऑफ साउथ इंडिया' के अधीन कार्यरत है।
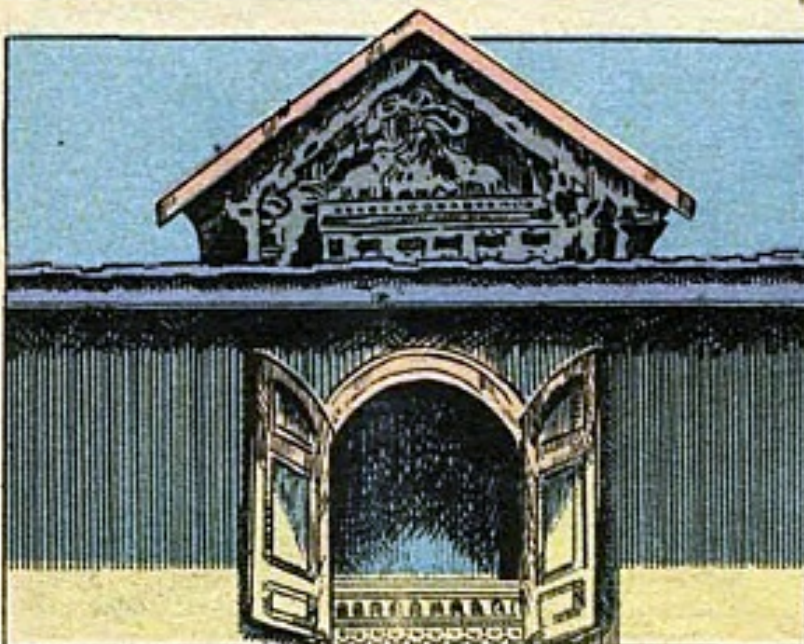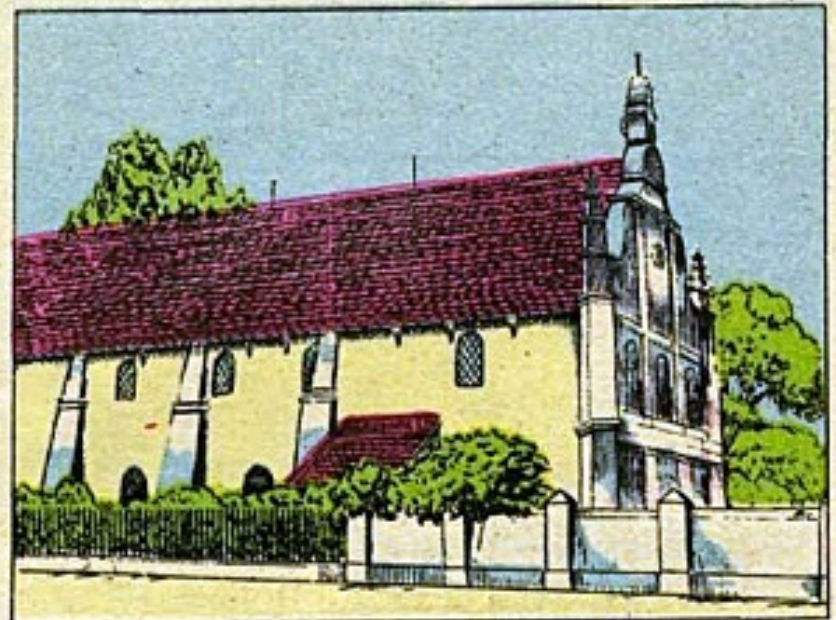
सोलहवीं शताब्दी में पुर्तगाल के लोगों ने एक डच भवन का निर्माण किया और उसे कोचिन के राजवंशियों को उपहारस्वरूप दिया। इसकी दीवारों पर रामायण की कुछ घटनाएं अंकित हैं।

सुलेमान बादशाह के व्यापारी जहाज़ों पर यहूदी लोग यहाँ आये थे, ऐसा कहा जाता है। यहाँ के राजाओं का आश्रय और आदर पाकर यहूदियों ने यहाँ सुख-चैन से अपना जीवन बिताया था ।
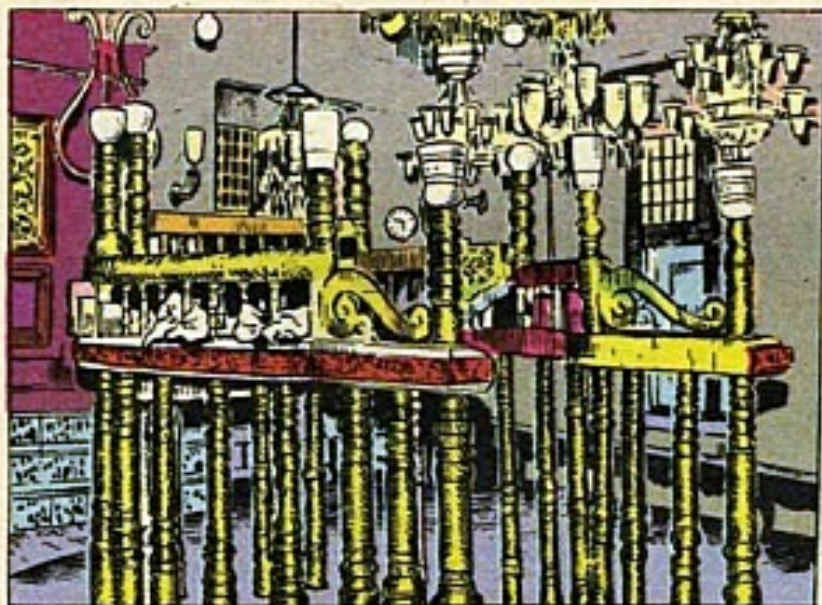
यहूदियों के प्रार्थना-मंदिर का भीतरी भाग अपने अपूर्व अलंकरण के लिए विशेष रूप से विख्यात है । इज़रायल की सरकार बनने के बाद बहुत से लोग कोचिन छोड़कर वहाँ चले गये । फिर भी उनका प्रार्थना-मंदिर अत्यन्त श्रद्धा के साथ परिरक्षित किया जा रहा है ।

कोचिन का हिन्दू मंदिर भी अद्भुत सुन्दर है । इस स्थान की यह विशेषता है कि यहाँ यहूदी, ईसाई, हिन्दू एवं मुसलमानों में भाईचारा है और वे मिलजुलकर रहते हैं ।

ई॰ सन् प्रथम शताब्दी में जब मलबार के तट पर संत थॉमस का आगमन हुआ था, तब ऐसा सुनने में आता है कि एक यहूदी बालिका ने उनका स्वागत किया था। वह एक ऐसा युग था जब भारत में विभिन्न धर्मों के बीच किसी प्रकार का वैमनस्य नहीं था।

यहाँ की महान ऐतिहासिक इमारतों के पीछे समुद्र का नील जल-विस्तार है। एक ओर प्रशांत गंभीरता है तो दूसरी ओर बन्दरगाह जैसे आधुनिक व्यापारिक संस्थानों का कोलाहल है।
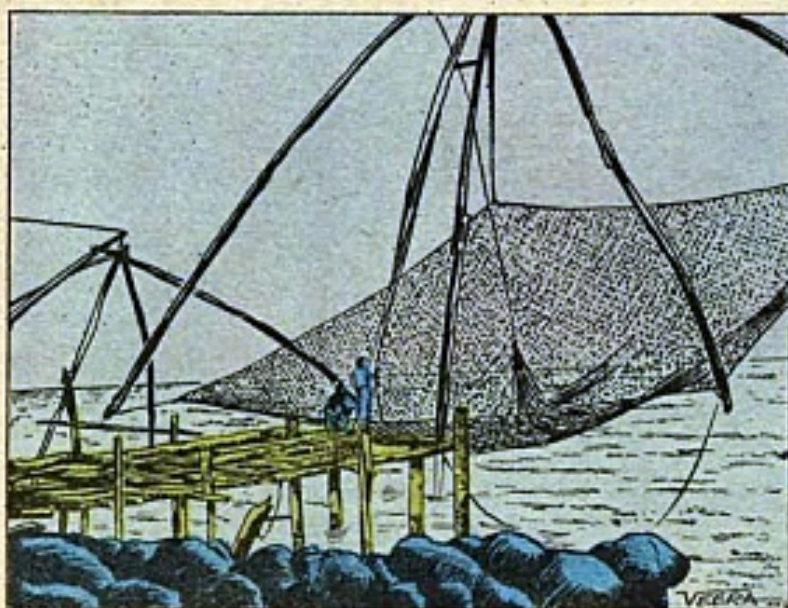
समुद्र तट पर सबसे पहले हमारी दृष्टि को आकर्षित करता है मछली पकड़ने का दृश्य, जिसमें चीनी जालों का उपयोग किया जाता है। इस प्रदेश में अधिकांश लोगों की आजीविका का माध्यम मछली पकड़ना है धीरे-धीरे यहाँ के मछुआरे मछलियां पकड़ने के लिए आधुनिक उपकरणों के प्रयोग की ओर बढ़ रहे हैं।

पितृ-भक्ति

एक समय की बात है चीन देश में टोंग नाम का एक युवक रहा करता था। अभी टोंग शिशु ही था कि उसकी माँ का देहान्त होगया। जब वह उन्नीस वर्ष का हुआ, तब उसके पिता का भी स्वर्गवास होगया। टोंग का पिता एक मामूली मज़दूर था। वह अपने जीवन में कुछ भी संचय न कर सका। जिस समय टोंग के पिता की मृत्यु हुई, उस समय घर में तांबे का एक सिक्का भी नहीं था। मातृ-पितृविहीन टोंग पूरी तरह निर्धन छूट गया।

टोंग ने अपने मन में निश्चय किया कि वह अपने पिता के मरणोपरान्त के सारे कर्मकांडों को समुचित रूप से संपन्न करेगा, दूसरे उनकी कब्र पर एक सुंदर छतरी का भी निर्माण करायेगा। पर टोंग के पास तो एक कौड़ी भी नहीं थी। यह सब कैसे संभव होगा? धन पाने के लिए उसके पास एक ही उपाय था कि वह एक गुलाम के रूप में अपने को किसी के हाथ बेच दे।

टोंग ने एक गत्ते पर अपना मूल्य और गुलाम बनने की शर्तें लिखीं और उसे गले में लटकाकर गुलामों की हाट में एक चट्टान पर बैठ गया। गुलामों के ख़रीदार उधर से निकलते तो गत्ते पर लिखी शर्तों को पढ़कर आगे चले जाते।

टोंग ने अपने बिकने की शर्तों को इतना आसान नहीं रखा था। उसने अपना मूल्य भी दूसरों की तुलना में अधिक रखा था। उसे इतनी धनराशि अवश्य चाहिए थी कि वह अपने पिता की शास्त्रोक्त विधि से मरणोपरान्त की क्रियाएं संपन्न करा सके तथा कब्र पर पक्की ईंटों की एक छतरी बनवा सके। वह अमुक धनराशि के बदले अपना पूरा जीवन गुलाम के रूप में काटने को तैयार था।

कई घंटे बीत गये, पर टोंग को ख़रीदने के लिए कोई नहीं आया। अब तो टोंग मन ही मन

अपने मालिक के पास पहुँचा और उसकी चाकरी में लग गया। मालिक ने टोंग को रहने के लिए एक झोंपड़ी दी।

समय बीतने लगा। टोंग के लिए सुख-आराम दुर्लभ हो गया। फिर भी, वह अपने पिता की आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करता।

एक वर्ष फ़सल काटने के समय टोंग बुखार का शिकार होगया। वह खाट से उठ नहीं सका। दूसरे दिन कड़ी धूप थी। टोंग तेज़ बुखार के कारण बेहोश पड़ा हुआ था। तभी उसे लगा कि कोई उसके शरीर पर शीतल कोमल हाथों से सहला रहा है। उसने अनुभव किया कि उसकी सारी दुर्बलता धीरे-धीरे दूर होती जारही है। उसने अपने अन्दर शक्ति का संचार अनुभव किया तो इस आकस्मिक परिवर्तन से विस्मित होकर आंखें खोलीं। उसने देखा एक अत्यन्त सुन्दर रमणी उसके ऊपर झुकी हुई है। वह अलौकिक जान पड़ती थी। टोंग का साहस न हुआ कि उसका परिचय पूछे। उस स्त्री ने टोंग के माथे पर हाथ फिराते हुए कहा, "तुम्हारी बीमारी दूर हो चुकीहै। मैं तुम्हारी पत्नी बनकर तुम्हारे साथ रहने आयी हूँ।"

टोंग को लगा कि उस स्त्री के स्वर में आदेश की गरिमा है। वह घबराकर खाट पर से उठकर खड़ा होगया। उसे अपने शरीर में अद्‌भुत स्फूर्ति का अनुभव हुआ। वह उस सुन्दर रमणी से कहना चाहता था कि वह उसे पत्नी बनाकर उसका निर्वाह करने की स्थिति में नहीं है। उस

भयभीत होने लगा। यदि वह न बिका तो धन कहाँ से आयेगा? पिता की आत्मा की शांति के लिए अनुष्ठान कैसे होंगे? कब्र पर छतरी का निर्माण किसप्रकार होगा?...टोंग इसी सोच में डूबा था कि एक अधिकारी उधर से निकला। उसने टोंग के गले में लटकी तख्ती को पढ़ा और फिर अपने साथ आरहे सेवक के द्वारा उसका मूल्य चुकाकर गुलामी का शर्तनामा लिखवा लिया।

टोंग की मनोकामना पूर्ण होगयी। उसने धार्मिक अनुष्ठानों को पूर्ण किया और यथाविधि दान-पुण्य किये। इसके बाद इसने एक कुशल शिल्पी से अपने पिता की पक्की, सुन्दर समाधि का निर्माण करवाया। टोंग अपने कर्त्तव्य को पूरा कर

स्त्री ने टोंग के मन की बात ताड़ ली, बोली, "जीवन-निर्वाह की चिंता न करो! गृहस्थी मैं स्वयं चला लूँगी ।"

टोंग शर्मिन्दा होकर चुप खड़ा रहा। उसने अपने चिथड़ों पर नज़र डाली। पर उस नारी ने भी वैसे ही फटे-पुराने वस्त्र पहने हुए थे। उसके शरीर पर आभूषण के नाम पर धातु का एक तार भी नहीं था। दोनों मंदिर में गये और घुटने टेक कर पितृदेवताओं से प्रार्थना की और पूजा-अर्चना करके पति-पत्नी बन गये ।

उनका विवाह बिना किसी परिचय के ही संपन्न हुआ। टोंग ने उस नारी से नहीं पूछा कि वह कहाँ से आयी है और उसका वंश क्या है। उस स्त्री ने केवल इतना कहा, "मेरा नाम ची है। बस यही मेरा परिचय है।" इसके अलावा उसने भी और कुछ नहीं बताया ।

ची के आगमन से तो टोंग की दुनिया ही बदल गयी। उसकी झोंपड़ी अब एक सुन्दर घर बन गयी थी। सारा घर सजा हुआ रहता। काम पर जाने से पहले टोंग भर पेट खाना खा लेता और जब वह खेत का काम पूरा करके घर लौटता, तो खाना एकदम तैयार मिलता ।

ची दिन भर करघे के सामने बैठकर रंग-बिरंगे चित्रोंवाले रेशमी कपड़े बुनती। ची की कारीगरी की कुशलता की बात सब तरफ़ फैल गयी। व्यापारी लोग प्रतिदिन उसके घर आते और उसके हाथ के बुने रेशमी वस्त्रों के थान मुँह माँगा दाम देकर ख़रीद ले जाते ।

ची बड़ी कुशलता से गृहस्थी चलाने का अपना वादा पूरा कर रही थी। संदूक में धन भरता जारहा था। एक दिन ची ने टोंग को वह संदूक खोलकर उसमें भरे चांदी के सिक्के दिखाये और उसके भीतर से एक कागज़ निकालकर टोंग के हाथ में थमा दिया। वह कागज टोंग की रिहाई का दस्तावेज़ था। टोंग के मालिक को उसका क्रय-धन प्राप्त होगया था। टोंग की आँखो से आनन्द अश्रु बहने लगे। आज उसकी गुलामी समाप्त होगयी थी ।

"मैंने तुम्हारे लिए दक्षिणी दिशा में खेत और रेशम के कीड़ों के बाग़ ख़रीद लिये हैं। आज से तुम्हें दूसरों की चाकरी करने की आवश्यकता नहीं है।" ची ने कहा ।

टोंग अपनी पत्नी के पैरों पर गिरने को तैयार होगया, पर ची ने उसे रोक दिया ।

अब टोंग का भाग्य पूरी तरह उदय पर था । वह जो भी काम करता, उसमें सफलता मिलती । उसके अधीन काम करनेवाले लोग टोंग के प्रति स्नेह एवं आदर का भाव रखते थे । टोंग का संसार सारी खुशियों से भरा था ।

उन्हीं दिनों ची गर्भवती हुई । उसने करघे का काम बंद कर दिया । ठीक समय पर ची ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया । उस बालक को देखने के लिए जो भी आता, यही कहता, "यह साधारण लड़का नहीं है । किसी देवता के वरदान से इस बालक का जन्म हुआ है । यह सौ वर्ष जियेगा । जीवन में कुछ अद्भुत कार्य करेगा ।"

एक वर्ष जब जाड़े का मौसम आया, टोंग और ची दोनों पति-पत्नी अपने पुत्र के बारे में सारी रात बात करते रहे । वे अपने पुत्र के भविष्य को लेकर अनेक स्वप्न देख रहे थे । टोंग ने बड़े प्रेम से ची के चेहरे की तरफ़ देखा । वह आज सब दिनों से अधिक सुंदर लग रही थी ।

सुबह होने ही वाली थी । ची झट से उठ खड़ी हुई । उसने टोंग का हाथ पकड़ा और वह उसे बच्चे के झूले के पास ले गयी । न मालूम क्यों, आज ची असाधारण लग रही थी । टोंग उसे देखकर घबरा-सा गया । उसकी आंखें मुंद गयीं । और उसने ची के सामने घुटने टेक दिये । अब टोंग ने आंखें उठाकर ची की तरफ़ देखा । टोंग के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, ची की आकृति पूरी तरह बदली हुई थी । अब वह साधारण स्त्रियों की तुलना में क़द में कहीं ऊँची थी । उसकी देह से अलौकिक प्रकाश फूट रहा था ।

"टोंग! अब मेरे तुम्हें छोड़कर चले जाने का समय आगया है । मैं मानवी नहीं हूं । पर तुम्हारे लिए मैंने मानवी कलेवर धारण किया था । तुम्हारी पितृभक्ति पर प्रसन्न होकर स्वर्ग के स्वामी ने मुझे तुम्हारे पास कुछ काल के लिए भेजा था । मैं ची-नियु नाम की अप्सरा हूँ । अब मुझे स्वर्ग वापस जाना है । मेरे स्मृति-चिन्ह के रूप में तुम्हारे पास हमारा यह पुत्र होगा, तुम दुखी न होना ।" ची ने कहा और वह धीरे-धीरे अन्तर्धान होगयी ।

कृष्ण की चंचलता दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जारही थी। उनकी शरारतों से गोकुल के लोग परेशान हो उठे थे। कृष्ण अपने कार्यों से एक ओर तो गोप-गोपिकाओं को चकित कर देते, दूसरी ओर उन्हें कठिनाई में भी डाल देते। कृष्ण के नटखट कारनामों को गोकुल के गोप तो सहते रहे, पर गोपिकाओं से चुप न रहा गया। उन्होंने एक दिन एकत्रित होकर आपस में परामर्श किया और कृष्ण की शिकायत करने के लिए यशोदा के पास गयीं। अब तो एक के बाद एक कृष्ण के क्षतिपूर्ण कार्यों का किस्सा आरंभ होगया।

चम्पा नाम की एक गोपी ने तीखे स्वर में यशोदा से कहा, "नन्दरानी, हमें यह बताओ, क्या तुम्हारा ही बेटा दुनिया में अनोखा है? क्या और माँओं के बेटे उनके लाड़ले नहीं हैं? यह कृष्ण हमें जीभर कर परेशान करता है और तुम उसे कुछ नहीं कहतीं। ऐसा एक दिन भी नहीं जाता, जब हमारे जी को क्लेश न होता हो। हम बच्चा समझकर इसकी करतूतों को सहन करती रहीं, पर अब हमसे नहीं सहा जायेगा। तुम धनी-मानी हो, हमारे नायक की पत्नी हो, तो इसका यह अर्थ नहीं कि तुम्हारी सन्तान दूसरों का जीना दूभर कर दे। तुमने ही इसे इतना उद्दंड बना दिया है। इतना लाड़ पाकर यह सिर चढ़ गया है और किसी को कुछ समझता ही नहीं। यह बेरोक-टोक हमारे घरों में घुस जाता है और तोड़-फोड़ करके भाग जाता है। तुमने सब कुछ जानते हुए भी अपनी आँखें मूंद रखी हैं। हम पर थोड़ी दया करो!"

अभी चम्पा ने अपनी बात पूरी ही की थी कि मालती नाम की गोपी ने शिकायत शूरू कर दी,
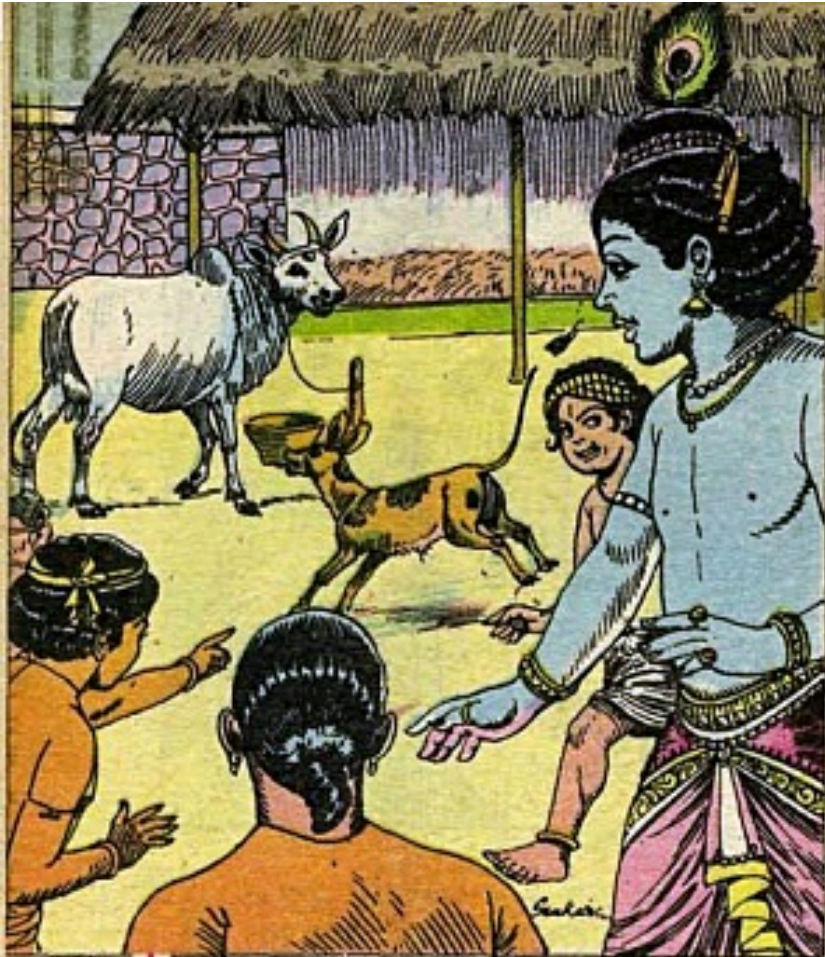
बोली, "तुम्हारा लाड़ला बेटा कन्हाई हमारे घर में घुसा और मटकियों में भरे दूध, दही, मक्खन को कुछ खा गया और बाकी को उलटा कर भाग गया। हमारे हाथ कुछ नहीं बचा। अब तुम्हीं बताओ, हम इतना नुक़सान क्यों सहन करें? हम तुम्हारी तरह धनी मानी नहीं हैं। दूध-दही से ही अपनी रोटी चलाती हैं। तुम्हारे इस सपूत के कारण हमें दूध-दही न खाने को बचता है न बेचने को।"

अब गोपी रमा की बारी आयी। वह हाथ मटका कर बोली, "सुन माई, मेरे साथ क्या हुआ?मैं ने तो अपने मक्खन की मटकियों को ऊपर छीकों पर रख दिया था, ज़मीन पर भी नहीं रखा था। पर तुम्हारा यह छोटा-सा कान्हा नाम का ही छोटा है, है पूरा राक्षस। न जाने कैसे इसका हाथ ऊपर पहुँच गया। मटकियां तो फोड़ ही डालीं, साथ ही छीकों को भी तोड़ डाला। यह तो पूरा अत्याचार है। कितने दिन इसकी दुष्टता को सहन करें हम? प्रतिदिन ही कोई न कोई घटना होती है। अब तो बस एक ही उपाय रह गया है कि हम गोकुल छोड़कर भाग जायें।" कहते-कहते श्यामा की आँखों से आँसू बहने लगे।

अपनी सखि को रोते देख विजया गोपी का क्रोध भड़क उठा। उसने श्यामा से कहा, "बहन, तू रो मत, रोने से काम नहीं चलनेवाला है।" फिर यशोदा की तरफ़ घूमकर बोली, "नन्दरानी! अब तुम इस गाँव में अपने लाड़ले के साथ अकेली बसो। हमसे यहाँ नहीं रहा जायेगा। तुम्हारे बेटे ने हमारा जीवन दुष्कर कर दिया है। मैं अपने घर में ताला लगाकर बाहर गयी थी, पर तुम्हारे इस कृष्ण-कन्हैया ने ताला तोड़ डाला और घर में घुसकर सारा दूध-दही ज़मीन पर लुढ़का दिया। अब हम क्या उन ख़ाली मटकियों को चाटें?"

शिक़ायतों का पुलिन्दा अभी समाप्त नहीं हुआ था। तभी सजला नाम की एक गोपी भीड़ चीरकर आगे आयी और मुँह बनाकर बोली, "मेरे घर में यशोदा के बेटे ने जो किया है, उसके बाद तो कहीं भाग जाने का मन करता है। पूरी दस मटकियों में दूध-मक्खन भरकर रखा था। जी में खुशी थी कि आज हाथ में कुछ अच्छा आ जायेगा। पर इसने पहले तो स्वयं दूध-मक्खन

खाया, फिर अपने साथियों को खिलाया। पेट छकने पर भी इसे चैन न आया तो इसने बचा-खुचा सारा उलटा कर दिया। इतना ही नहीं, यह जाते समय बछड़ों की रस्सियां खोल गया। उन्होंने गायों का सारा दूध पी लिया। अब हमारे बच्चों के लिए कुछ नहीं बचा है।"

रत्ना नाम की एक गोपी अवरुद्ध कंठ से बोली, "मेरे पति और बच्चे मिठाई खाने के लिए कितने दिनों से कह रहे थे। मैंने आटे में दूध, घी मिश्री डालकर मिठाई बनायी और उसे हंडियों में सजाकर रख दिया। इस यशोदा के लाड़ले ने घर में घुसकर हंडियों की सारी मिठाई खा ली। कौन जाने, इसके पेट में भूत है या प्रेत है? अब मेरा पति लौटेगा तो क्या उसे हंडिये खिलाऊँगी? बच्चों को क्या दूँगी? अब यशोदा मुझे बताये, मैं क्या करूँ?"

सब गोपियां नमक लगाकर कृष्ण की चुग़ली करने लगीं। सबके कहे अनुसार अब उनके घर में कुछ नहीं बचा था। मिठाई, घी, दूध, दही, मक्खन—सब कृष्ण और उनके साथियों के पेट में पहुँच चुका था। कृष्ण के ये सारे करतब अमानवीय थे। इन अमानुष कृत्यों को सहन नहीं किया जा सकता था। सब गोपिकाओं ने अपना फ़ैसला सुना दिया, "हम अब गोकुल में नहीं रहेंगे। यह गाँव छोड़कर कहीं और चले जायेंगे। अब अपने बेटे के साथ गोकुल पर राज्य करो!"

यशोदा मन मारे सब सुनती रही, फिर हर एक गोपी को सांत्वना देकर बोली, "तुम्हारे घर में जो भी नुकसान हुआ है, वह मैं भर दूँगी। चिंता मत करो! पर यह गाँव छोड़कर मत जाओ! तुम्हारे बिना हमारा काम नहीं चलेगा। मेरे इस कन्हाई की करतूतों को भूल जाओ! इस छोटे से बालक ने ऐसे बड़े दुष्कृत्य किये हैं, विश्वास नहीं होता, पर तुम्हारी बातों पर तो विश्वास करना ही पड़ेगा। तुम्हें कृष्ण से क्या वैर है कि तुम झूठ बोलोगी? अब मैं अपने बेटे पर पूरा नियंत्रण रखूँगी। इसकी निगरानी करूँगी। अब तुम निःशंक मन से अपने-अपने घर चली जाओ!" यशोदा से आश्वासन पाकर सब गोपियां वहाँ से चली गयीं।

इसके बाद यशोदा ने कृष्ण को गोद में लेकर प्यार किया और बोली, "बेटा, क्या हमारे घर में
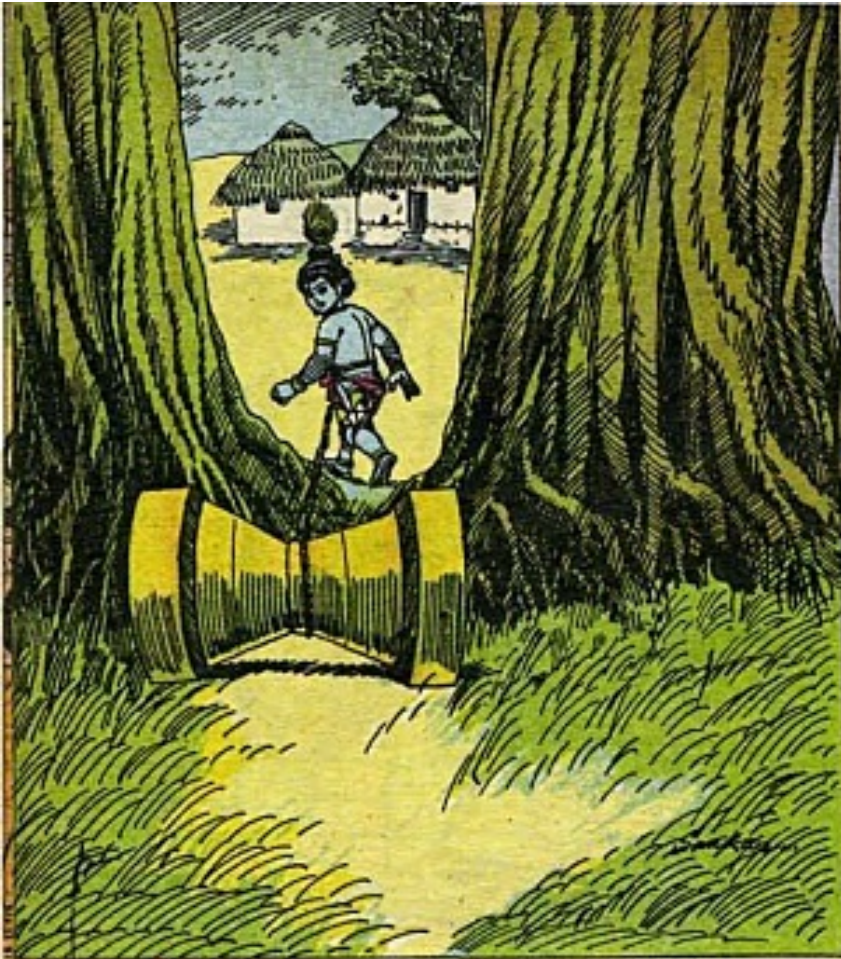
दूध, मक्खन की कमी है? तुम दूसरों के घर में जाते ही क्यों हो? लो, पहले मेरा दूध पियो! कहते हैं, मां के दूध का एक घूंट अन्य एक सेर दूध के बराबर होता है। तुम हमारी ग्वालिनों के साथ क्यों झगड़ा मोल लेते हो?" इसके बाद यशोदा ने कृष्ण को दूध पिलाया। फिर बलैया लेकर उनका माथा सूँघा और अधरों को चूमकर बोली, "बेटा, सुबह जबसे आँख खुलती है, सारा दिन तुम्हारी शिकायतें सुनने में ही बीतता है। तुम ऐसी चपलता क्यों दिखाते हो कि सबका जीना कठिन हो जाये? तुम्हारी उद्दंडता बढ़ती ही जारही है। अब तुम्हें खुला रखने का अर्थ है, फिर किसी के साथ एक नया झगड़ा मोल लेना। तुम पर अब अंकुश रखना होगा।" यह कहकर यशोदा ने कृष्ण की बाँह पकड़ी और उन्हें बैलगाड़ी के पास लेगयी और उनकी कमर में रस्सी डालकर उन्हेंओखली से बांध दिया। इसके बाद उन्हें छड़ी से धमका कर बोली, "यहाँ बंधे रहो! अगर हिले तो मार पड़ेगी। अब मैं देखती हूँ कि तुम कैसे शरारत करते हो?" इसप्रकार कृष्ण को बांधकर यशोदा घर के काम काज में लग गयी।

कृष्ण कुछ देर तो बंधे रहे, फिर रस्सी पकड़कर धीरे-धीरे ओखली को अपने पास खींच लिया। इसके बाद वे ओखली को गोशाला के अहाते में खड़े दो साल वृक्षों के निकट घसीट कर लेगये। कृष्ण पास-पास खड़े उन दो साल वृक्षों के बीच घुसकर उस पार चले गये और उन्होंने पूरी शक्ति से उस ओखली को खींचा। फिर क्या था, दोनों वृक्ष उखड़ कर गिर पड़े। पेड़ों के गिरने की विकराल ध्वनि को सुनकर अनेक गोप-गोपियां दौड़े हुए घटना-स्थल पर आये। उन्होंने उस दृश्य को देखा तो वे दौड़े हुए यशोदा के पास गये और बोले, "माई, तुम्हारा कृष्ण मानव नहीं, कोई भीषण देव है देव! उसने उन विशाल सालवृक्षों को उखाड़कर अपने ऊपर गिरा लिया है। तुम सोचती हो कि तुमने कृष्ण को बांधकर बड़ी बुद्धिमानी का काम किया है? जाओ, देखो, बच्चा जीता भी है या नहीं!"

सारी बात सुनकर यशोदा का कलेजा काँप उठा। वह चीखकर दौड़ पड़ी। उसका अंचल गिरा है या वेणी खुल गयी है, उसे इस बात का ध्यान तक न रहा। सारी गोपियां भी यशोदा के
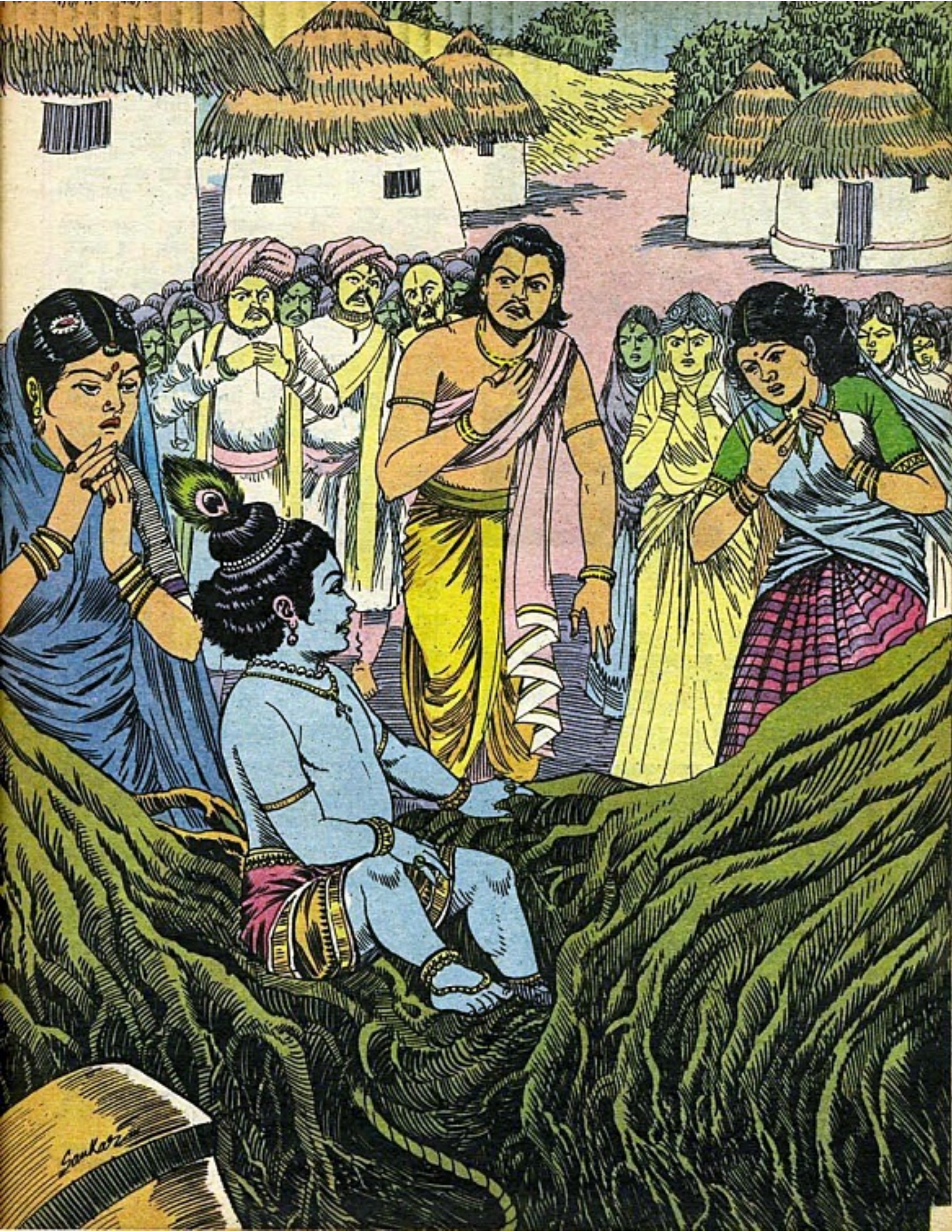
साथ होगयीं ।

इस बीच नन्द भी अन्य गोपों के साथ वहाँ पहुँच गये। उन्होंने देखा, कृष्ण गिरे हुए वृक्षों के बीच मंदहास करते हुए इसप्रकार बैठे थे, मानो मेघों के बीच चंद्रमा शोभायमान हो। नन्द ने झट आगे बढ़कर बच्चे की कमर में बंधे पट्टे को खोल दिया और कृष्ण को गोद में उठा लिया। फिर पूछा, "कृष्ण की कमर में यह पट्टा कैसा? इसे ओखली से किसने बांधा है? इस ओखली को खींचता हुआ यह इतनी दूर कैसे आगया? ये विशाल सालवृक्ष कैसे गिर पड़े? यह सब क्या है?"

यशोदा ने बताया कि कृष्ण की कमर में पट्टा उसी ने डाला था और उसी ने कृष्ण को ओखली से बांधा था। नन्द सारी घटना समझ गये और अपने पुत्र की इस अलौकिक सामर्थ्य पर आश्चर्यचकित हो उठे। उन्हें मन ही मन अपार आनन्द का अनुभव हुआ।

वृद्ध गोप कुछ भी न समझ सके। वे कहने लगे, "इस समय आंधी, तूफ़ान कुछ भी तो नहीं। बिजली भी नहीं गिरी। कोई हाथी भी इस ओर नहीं आया। कोई सेना भी इधर से नहीं गुज़री। तब ये वृक्ष कैसे गिरे? अगर कृष्ण जैसे एक छोटे से बालक ने इन्हें गिराया है तो इससे बढ़कर उत्पात और क्या हो सकता है? ऐसी घटना पहली बार ही नहीं हुई है। भयंकर राक्षसी पूतना इसके हाथों से हठात् मर गयी। इतनी बड़ी गाड़ी बिना किसी कारण के टुकड़े-टुकड़े होगयी। यहाँ रहना तो अब संकटपूर्ण हो उठा है। पर हम यहीं जन्मे हैं, यहीं पले और बड़े हुए हैं। यहीं हमारा रोज़गार-धंधा, कुटुम्ब-कबीला है। इस गाँव को छोड़कर अब इस बुढ़ापे में कहाँ जायेंगे?" इसप्रकार बात करते हुए सब लोग अपने-अपने घर चले गये। गोपिकाएँ भी चली गयीं।

दिन बीतते गये। अब बलराम आठ वर्ष के होगये थे। कृष्ण सात वर्ष पूरे कर चुके थे। ये दोनों बालक अपने समवयस्क बालकों के साथ खेलते हुए बड़े होने लगे। इन बालकों के उत्साह का ठिकाना नहीं था। भय तो ये जानते ही नहीं थे कि किस चिड़िया का नाम है। बलराम और कृष्ण के साथ दूसरे गोप बालकों का साहस भी बढ़

गया था। ये लोग अपने हाथों में छीके और कोड़े लिये रहते, पैरों में पादुकाएँ पहन लेते और अपने केशों को झटकते हुए चल पड़ते। ये खेतों में जाकर इतनी ज़ोर से चिल्लाते कि भेड़िये भाग जाते। इनका काम था गीत गाना और पेड़ों पर चढ़ना। अगर कहीं शहद के छत्ते दीख जाते तो ये उन्हें तोड़कर सारा शहद पी जाते। छीकों से भात निकालकर खा लेते। इसप्रकार इन यदुवंशी बालकों के लिए जीवन एक मधुर अवकाश की भाँति था।

एक दिन कृष्ण ने बलराम से कहा, "बलदाऊ, हम इस गोकुल में जन्मे और यहीं पले। क्या रेवड़ और गोपों का इतने समय तक एक ही स्थान पर रहना उचित है? पशुओं ने चरागाहों को ख़ाली कर दिया है। लकड़ी के लिए नित्यप्रति पेड़ काटे जाते हैं, इसलिए हरियाली भी नहीं रही। तालाब और गड्ढे या तो सूख गये हैं या दलदल बन गये हैं। शाक और जल के लिए बहुत ही दूर जाना पड़ता है। इसलिए हम इस प्रदेश को छोड़कर क्यों न वृन्दावन में चलें। सुना है वह अत्यन्त सुन्दर वन है। वहाँ गोवर्द्धन नाम का एक पर्वत है। उस पर भांडीर नाम का एक विशाल वटवृक्ष भी है। वृन्दावन के बीच कालिन्दी नदी की सुन्दर जलधारा है। हम वहाँ जाकर बड़े सुख से जीवन बितायेंगे। हमारे वृद्ध गोप इस स्थान को छोड़ने के पक्ष में नहीं हैं। उन्हें इस स्थान का भय दिलाने से वे भी मान जायेंगे। देखो, मैं एक उपाय करता हूँ।"
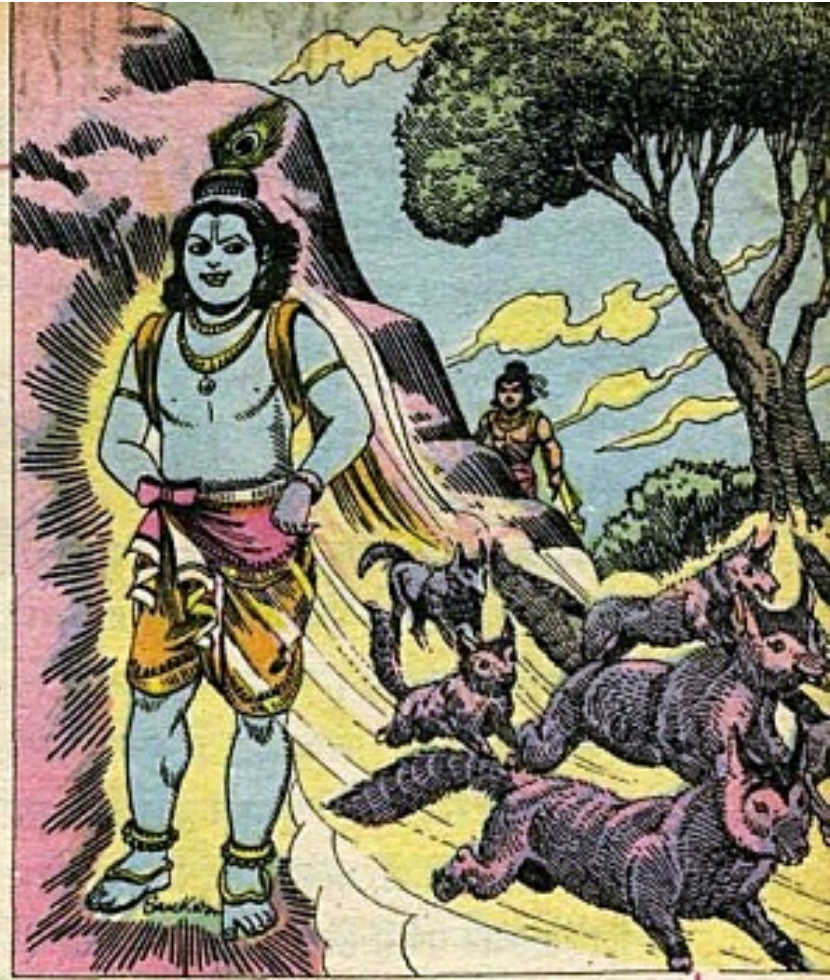
कृष्ण ने अभी अपना वाक्य समाप्त ही किया था कि उनके शरीर से सैकड़ों की संख्या में भेड़िये निकलने लगे और वे झुंडों में चारों तरफ़ दौड़ने लगे। गोप भयभीत हो उठे। गायें घबराकर रंभाने लगीं। इन भेड़ियों की चालढाल साधारण भेड़ियों से अलग जान पड़ती थी। गोप उनका पीछा न कर सके। बाघों को भी पछाड़ देनेवाले सांडों को इन्होंने मार डाला। गोपों की दृष्टि के हटते ही ये भेड़िये बछड़ों को उठा ले गये। उत्पात यहीं समाप्त नहीं हुआ। रात भर बाघ दहाड़ते रहे, सिंह गरजते रहे। बड़े-बड़े सुअरों ने सारे गोकुल में गड्ढे खोद डाले।

इन सारी घटनाओं से गोपों में अंतक छागया। सारे वृद्ध गोप एक स्थान पर एकत्रित हुए। वे

पहले हुई घटनाओं से ही घबराये हुए थे, पर अब तो इन उत्पातों के कारण गोकुल में रहना असंभव जान पड़ने लगा। वे गोकुल के मोह में पड़कर गोकुल को छोड़ नहीं पा रहे थे, पर अब तो और कोई उपाय ही नहीं था। वे सब अपना कर्तव्य विचारने लगे।

तब एक वृद्ध गोप ने कहा, "सुनते हैं वृन्दावन अत्यन्त सुन्दर एवं दिव्य स्थान है। सभी उसकी प्रशंसा करते हैं। पर यह भी सुना है कि वृन्दावन एक दुर्गम प्रदेश भी है और उसमें राक्षसों का भी निवास है। पर हमें कुछ तो करना ही होगा। जैसे भी हो, तत्काल किसी दूसरे प्रदेश के लिए प्रस्थान करना होगा। यहाँ अब कुछ देर भी रहना विपदा का कारण बन सकता है। हर क्षण कोई न कोई उत्पात घटित हो रहा है और हमारी संपत्ति नष्ट होती जा रही है।"

सब इसप्रकार चर्चा कर ही रहे थे कि उनके बीच देवर्षि नारद का आगमन हुआ। उन्होंने गोपनायक नन्द को पुकारा और एकान्त में लेजाकर कहा, "नन्द, एक ओर आप लोग वृन्दावन जाने का विचार कर रहे हैं, दूसरी ओर यह सोचकर डर रहे हैं कि वहाँ राक्षस हैं। आपको अपने पुत्र कृष्ण के जीवन का भी ख़तरा है। पर सुनिये, कृष्ण साधारण मानव नहीं हैं। वे दुष्टों का संहार करने के लिए अवतरित हुए आदि नारायण हैं। बलराम और कृष्ण में उन्हीं आदि नारायण का दिव्य अंश है। कृष्ण का संहार करने के लिए राक्षसी पूतना आयी, शकट एवं साल वृक्षों में छुपकर राक्षस आये, पर उनका संहार न कर सके, बल्कि स्वयं ही विनाश को प्राप्त हुए। आपने तो इन घटनाओं को प्रत्यक्ष देखा है। अब आप संशय न करें और अपने रेवड़ के साथ वृन्दावन के लिए प्रस्थान करें। आप सबका हित होगा।"

नन्द से बात करने के पश्चात् नारद ने कृष्ण से भी यही कहा और वे चले गये। तब नन्द ने अन्य गोपों से कहा, "हम सब लोग अब वृन्दावन के लिए प्रस्थान कर रहे हैं। अब वृन्दावन में ही हमारा निवास होगा। आप सब लोग तुरन्त प्रस्थान की तैयारी करें!"

दान

विलासपुर में शांतिदत्त सेठ ने अनेक प्रकार के व्यापार करके बहुत धन कमाया था। एक बार वह किसी असाध्य बीमारी का शिकार होगया। वैद्य ने अनेक औषधियां दीं, पर बीमारी घटने के बदले बढ़ती चली गयी।

एक दिन शांतिदत्त ने वैद्य से कहा, "वैद्यराज, संपत्ति जोड़ने के लिए मैंने अनेक पाप किये हैं। मैंने आज तक कोई पुण्यकार्य नहीं किया है। इसीलिए औषधियां मुझे लाभ नहीं पहुँचा रहीं। अब मेरे मन में यह चिंता घर कर गयी है कि मृत्यु के पश्चात् मैं निश्चय ही नरक भोगूँगा।"

वैद्य जगदीश बड़ा सुलझा हुआ आदमी था। वह समझ गया कि सेठ शांतिदत्त मानसिक रोग का शिकार होगया है। उसने शांतिदत्त को समझाकर कहा, "सेठजी, आप चिंता न करें। मैं आज ही आपके हाथों से कोई पुण्य-कार्य करवा देता हूँ। आपके सारे पाप धुल जायेंगे। इसके बाद औषधियां भी अपना काम दिखलायेंगी।"

विलासपुर में राजू नाम का एक ग़रीब किसान रहता था। उसकी पत्नी कान्ता बड़ी सच्ची और नेकदिल औरत थी। दो बच्चे भी थे। राजू बड़ा कठिन श्रम करके खेतीबारी का काम किया करता था। पर कई बरसों से भाग्य उसका साथ नहीं दे रहा था। एक बार सारा धान बारिश में भीगकर सड़ गया। दूसरे साल उसके घर में चोरी होगयी। तीसरे साल धान के ढेर में आग लग गयी। ये सब कारण उसे कर्ज़दार बना गये।

जगदीश वैद्य ने मन में सोचा कि सेठ शांतिदत्त से कहकर राजू किसान का कुछ उपकार करवा देना चाहिए। वह राजू को शांतिदत्त के पास लेगया और बोला, "सेठजी, यह राजू किसान बहुत ज़रूरतमंद है तथा संकट में है। आप इसे दान देकर बहुत बड़े पुण्य के भागीदार बन जायेंगे।"

गंगाप्रसाद

सेठ शांतिदत्त ने राजू से उसकी सारी विपदाओं के बारे में पूछा। इसके बाद उसके सारे कर्ज़ चुकाये और एक वर्ष के लिए आवश्यक खाद्य सामग्री देकर उसे विदा किया। यह सब करके शांतिदत्त के ऊपर से भारी बोझ उतर गया।

अब जगदीश वैद्य की दवाएं शांतिदत्त पर अपना प्रभाव दिखाने लगीं। एक सप्ताह के अन्दर वह पूर्ण स्वस्थ होगया।

समाचार का प्रचार।

लोग आपस में चर्चा करने लगे, "हम सब भी यथाशक्ति कुछ न कुछ दान अवश्य करते हैं, पर हमने तो ऐसा आश्चर्य कहीं नहीं देखा। शायद राजू किसान में ही कोई ख़ासियत है कि शांतिदत्त का दान इतना फल लाया।"

यह बात राजू के कानों तक भी पहुँची। उसने इस बात का फ़ायदा उठाना शुरू किया। वह उस दिन से अपनी कहानी सुनाता हुआ घूमने लगा। गाँव का हर आदमी राजू को कुछ न कुछ दान इस भावना से अवश्य देता कि उसका अपना भला होगा या शायद कोई चमत्कार ही घटित होजाये। कोई उसे गेहूँ, धान आदि दे देता, तो कोई पैसे। प्रारंभ में संयोग के कारण कुछ लोगों को लाभ भी हुआ। अब तो सर्वत्र यह चर्चा फैल गयी कि निश्चय ही राजू के अन्दर कोई असाधारण शक्ति है।

इधर राजू की तो मौज आगयी। वह अब पड़ोसी गाँवों में भी पहुँचने लगा और अपनी कहानी सुनाकर दान प्राप्त करने लगा।

"सुनोजी, तुम लोभ में पड़कर किसान से भिखारी बन गये हो। हम पहले की तरह पुनः

मेहनत करके अपना जीवन यापन करेंगे।'' राजू की पत्नी कान्ता ने कहा।

''जब तक हमने कड़ी मेहनत की, हमारे दिन मुसीबत में ही कटते रहे। पर दान के इस धंधे ने हमारे दिन फेर दिये हैं। मैंने तो जीवन में पहली बार सुख का अनुभव किया है।'' राजू बोला।

कान्ता ने अपने पति की बात नहीं मानी। उसने समझाने की कोशिश की और कहा, ''जब सचमुच हम पर संकट था, तब शांतिदत्त सेठ ने हमें दान दिया था और वह सचमुच पुण्य का भागी बना था। पर अब हम पर कोई संकट नहीं है। इसलिए जो हमें दान करेगा, उसे भी पुण्य की प्राप्ति न होगी। गाँव के लोगों ने जिस दिन इस बात को समझकर हमें दान देना बंद कर दिया, उस दिन हमारी क्या हालत होगी? तुम आलस्य के शिकार होगये हो। जब आलस्य किसी को अपनी चपेट में ले लेता है तो फिर समझ लेना चाहिए कि उसकी बरबादी निश्चित है।''

राजू ने अपनी पत्नी की बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया।

कुछ दिन इसी प्रकार बीत गये। राजू अचानक बीमार पड़ गया। इस बीच गाँव में यह प्रथा-सी होगयी थी कि जो भी बीमार पड़ता, वह राजू को अवश्य कुछ दान देता। इसके बाद ही औषधि का सेवन करता। अब राजू बड़े धर्मसंकट में पड़ गया। उसने वैद्य को बुलाकर अपनी व्यथा सुनायी और पूछा, ''वैद्यजी, आप ही मुझे बताइये, मैं किसे दान दूँ!''

राजू को सही उत्तर देने के लिए वैद्य कुछ सोच-विचार में पड़ गया। इस बीच राजू की पत्नी

कान्ता वैद्य को अलग बुलाकर ले गयी और बोली, "वैद्यजी, पहले मेरा पति मेहनत करके सम्मान का जीवन बिताता था पर आपके कारण वह भिखारी बन गया है । मैंने उसे कितना समझाया, पर वह भीख से ही अपना जीवन बिताना चाहता है । एक भिखारी की पत्नी कहलाकर मेरा मुँह दिखाने का मन नहीं करता । आप इतना उपकार करें । दवा के साथ ही उसे कुछ ऐसी बूटी भी दें कि उसका हृदय-परिवर्तन हो जाये और वह आत्म-सम्मान का जीवन जीने लगे ।"

जगदीश वैद्य ने अपनी भूल को समझ लिया । उसने राजू ने कहा, "तुम किसे दान दोगे? तुम्हारे पास अपना कोई धन नहीं है । दान करने से हमेशा ही पुण्य प्राप्त नहीं होता । तुमने ज़रूरत के समय शांतिदत्त सेठ से दान लिया था तो तुम्हारे संकट-निवारण से उसे पुण्य की प्राप्ति हुई । तब तुम पुण्यशाली थे, इसलिए तुम्हारे पुण्य का एक अंश भी उसे प्राप्त हुआ था । पर अब निरन्तर दान लेते रहने से तुम्हारा सारा पुण्य नष्ट होगया है और तुम बीमार होगये हो । मैं औषधियां देकर निश्चय ही तुम्हें स्वस्थ कर सकता हूँ, पर अनावश्यक दान से तुम पर भारी बोझ है । मात्र औषधियों से वह हलका नहीं हो सकता । पहले तुम दान न लेने का वचन दो, तब मैं तुम्हारा इलाज करूँगा, अन्यथा नही । दान का पुण्य महान होता है । जो दान देता है, वह इस कामना से देता है कि एक तो दान देने से दान पानेवाले का तत्काल उपकार होगा और दूसरा यह कि दाता को इस बात का आत्म संतोष होता है कि मैंने अपनी संपत्ति में से थोड़ा धन दान देकर अपने बोझ को हलका कर रहा हूँ । पर तुमने दान का अर्थ नहीं समझा उलटे उसे अपनी स्वार्थ सिद्धि का साधन बनाया । इसीलिए तुम उस पुण्य से वंचित हो गये! समझें !

जगदीश वैद्य की बात सुनकर राजू की आँखें खुल गयीं । उसने शपथ ली कि अब वह किसी से दान नहीं लेगा और मेहनत करके ही अपना जीवन बितायेगा ।

जगदीश वैद्य की दवा से राजू शीघ्र ही स्वस्थ होगया । इस बार उसके भाग्य ने भी उसका साथ दिया । वह अपने श्रम से ही संपन्न बन गया ।

विषवृक्ष

पाटन राज्य पर महाराजा विष्णुवर्द्धन का शासन था। उनके इकलौते पुत्र का नाम था राजवर्द्धन। राजवर्द्धन का युवराज-पद पर अभिषेक हो चुका था और वह राजकार्यों में अपने वृद्ध पिता की सहायता करता था। एक दिन राजा विष्णुवर्द्धन अपने पूर्वजों का इतिहास पढ़ रहे थे। उसमें एक स्थान पर उन्होंने यह लेख पढ़ा—'पाटन के उत्तर में जो वन है, उसमें एक स्थान पर एक विषवृक्ष है। इसकी यह विशेषता है कि जो भी इसके नीचे खड़े होकर किसी वस्तु की कामना करता है, वह उसे अवश्य प्राप्त होजाती है। इस वृक्ष की सहायता से इस वंश के राजाओं ने प्रजाजनों की अनेक समस्याओं का हल कर राज्य को सुसंपन्न बनाया है।'

राजवर्द्धन ने भी ताड़पत्रों पर लिखित इस लेख को पढ़ा। वह पाटन के उत्तर में गया और उसने दस दिन तक खोज करने के बाद उस विषवृक्ष का पता लगा लिया।

राजवर्द्धन ने निश्चय किया कि वह उस वृक्ष की महिमा के बल पर प्राचीन राजाओं की भाँति अपनी प्रजाओं की समस्याओं का हल करेगा और भविष्य में एक उत्तम राजा के रूप में यशस्वी होगा। राजवर्द्धन उस वृक्ष को लेकर अनेक प्रकार की योजनाएं बनाने लगा।

दूसरे दिन की बात है। राजवर्द्धन अपने राजोद्यान में टहल रहा था। तभी सेनापति वीरभद्र की पत्नी यशोधरा वहाँ आयी और बोली, "युवराज! मेरे बच्चों ने दो दिन से भोजन नहीं किया है। वे अपने पिता के साथ ही सदा भोजन करते हैं।"

युवराज राजवर्द्धन ने दो दिन पहले सेनापति वीरभद्र को सीमा के सैन्यदलों का निरीक्षण करने के लिए भेजा था। यशोधरा की समस्या सुनकर राजवर्द्धन को बन में स्थित विषवृक्ष की याद

श्याम मनोहर पाठक

देखा कि ठीक उसी की आकृति का एक मनुष्य उसके स्थान पर बैठा बच्चों को खाना खिला रहा है। उसने क्रोधित होकर लाठी उठा ली और राजवर्द्धन पर प्रहार कर कहा, "अरे दुष्ट, तू कौन है? मांत्रिक है या मायावी ?"

लाठी का आकस्मिक प्रहार राजवर्द्धन सहन नहीं कर पाया। वह नीचे लुढ़क पड़ा और सारा वृत्तान्त सुनाकर बेहोश होगया। उसके स्वस्थ होने में दस दिन लग गये।

दूसरी घटना इस प्रकार हुई। प्रजा की वास्तविक स्थिति को जानने के विचार से एक दिन युवराज राजवर्द्धन ने छद्मवेश धारण किया और नगर में निकल पड़ा। एक घर में पति-पत्नी तीव्र स्वर में वाद विवाद कर रहे थे। राजवर्द्धन ओट में खड़ा होकर उनकी बातचीत सुनने लगा।

पत्नी क्रोधभरे स्वर में कह रही थी, "हमारी बेटी कमला की आयु की सभी लड़कियों की शादी होगयी। क्या इस लड़की को जीवन भर कुंवारी बन कर रहना होगा ?"

"नाराज़ क्यों होती हो? बस, रामदेव के आने भर की देर है। मैं चुटकी बजाते कमला की शादी कर दूँगा।" पति ने समझाकर कहा।

राजवर्द्धन वहाँ से निकल कर गली के मोड़ पर पहुँचा। अभी वह कुछ ही क़दम चला था कि उसे एक व्यापारी के घर से आ रही कुछ आवाज़ें सुनाई दीं। वह दीवार के पास जाकर उस घर में चल रहे वार्तालाप को सुनाने लगा।

व्यापारी का पुत्र अपने पिता से कह रहा था,

आगयी। वह यशोधरा को सांत्वना देकर सीधे वन में गया।

राजवर्द्धन विषवृक्ष के नीचे खड़ा होगया और उसने सेनापति का रूप धारण करने की कामना की। युवराज को सेनापति का रूप प्राप्त होगया और वह सेनापति के घर पहुँचा।

अपने पिता को आया हुआ देखकर सेनापति के बच्चे खुशी के मारे उसके पैरों से लिपट गये। यशोधरा ने बड़ी खुशी से सबके लिए खाना परोसा। सेनापति बना राजवर्द्धन बच्चों की बगल में बैठकर उन्हें खाना खिलाने लगा।

ठीक उसी समय सेनापति वीरभद्र का आगमन हुआ। वह सीमावर्ती सैन्यदलों का निरीक्षण कर राजधानी लौट आया था। वीरभद्र ने

"जब तक रामदेव नहीं आजाता, तब तक क्या हम हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहें ?"

"उसका आना और हमारी मुसीबतों का दूर होना—मुझे तो ये दोनों बातें ही अब असंभव लगती हैं ।" व्यापारी ने कहा ।

यह वार्तालाप सुनने के बाद युवराज राजवर्द्धन एक निर्णय पर पहुँचा । उसने सोचा क्यों न मैं ही रामदेव बनकर इनकी मदद करूँ । राजवर्द्धन तुरन्त वन में गया और विषवृक्ष के नीचे जाकर अपनी कामना से रामदेव के रूप में परिवर्तित होकर लौट आया ।

रामदेव से सम्बन्धित वास्तविक घटना इस प्रकार थी । रामदेव एक छोटा-सा समुद्री व्यापार करता था । उसके पास कोई पूंजी नहीं थी । चंद्रभानु नाम के एक गृहस्थ ने अपनी बेटी कमला के विवाह के लिए दस हज़ार रुपये बचाकर रखे थे । रामदेव ने ब्याज का लालच देकर उससे वह रुपया उधार ले लिया था । वह एक बार अपना माल जहाज़ पर लाद कर पूर्वी द्वीपों में व्यापार करने के लिए गया । पर उसे भयंकर घाटा हुआ । अब वह किस मुँह से स्वदेश लौटता ? इसलिए वह उन्हीं द्वीपों में बस गया था और छोटा-मोटा धंधा करके अपना गुज़ारा करता था ।

राजवर्द्धन को यह पूरी कथा मालूम नहीं थी । वह रामदेव के रूप में सबसे पहले व्यापारी के घर गया । दरवाज़े पर दस्तक दी । व्यापारी ने दरवाज़ा खोला तो रामदेव रूप में स्थित राजवर्द्धन ने बड़े दोस्ती के अन्दाज़ से पूछा, "भाईजी, आप कुशल तो हैं न ?"

रामदेव को पहचानते ही व्यापारी ने राजवर्द्धन को घर के भीतर खींच लिया । इसके बाद बाप-बेटे ने उसे खूब पीटा और उसके हाथ बांधकर कहा, "पहले तुम हमारे माल की क़ीमत ब्याजसहित चुकाओ, फिर तुम्हें छोड़ेंगे ।"

राजवर्द्धन को काटो तो खून नहीं । इस बीच व्यापारी का बेटा चंद्रभानु के घर जाकर उसे बुला लाया ।

चंद्रभानु ने प्रवेश करते ही राजवर्द्धन पर मुक्कों का प्रहार किया और कहा, "तुम चिकनी-चुपड़ी बातें करके मुझसे दस हज़ार रुपया लेगये थे । वह मेरी बेटी के विवाह के लिए रखा हुआ पैसा

था। चलो, राजा के पास ! वहीं तुम्हारा फैसला होगा ।" यह कहकर चंद्रभानु राजवर्द्धन को राजभवन में लेगया ।

मंत्री प्रेमशंकर ने चंद्रभानु के मुँह से सारी शिकायतें सुनीं, फिर कहा, "देखो, इस समय महाराज अस्वस्थ हैं और युवराज भी कहीं बाहर गये हुए हैं। इस अपराधी को मैं फिलहाल कारागार में बंद करवा देता हूँ।" यह कहकर मंत्री ने राजवर्द्धन को सैनिकों के हवाले कर दिया।

बन्दी बने राजवर्द्धन ने पहरेदार सैनिकों में से एक की खुशामद की और मंत्री प्रेमशंकर को बुलवा लिया। राजवर्द्धन ने मंत्री से अपनी दास्तान सुनायी और रिहा होगया ।

कुछ महीने और निकले। राजमहल में बड़े विचित्र ढंग से चोरियां होने लगीं। एक दिन कोष में से काफ़ी बड़ी राशि चोरी चली गयी। कुछ समय बाद महारानी के आभूषणों का सन्दूक ग़ायब होगया ।

चोर को पकड़ना जब सबके लिए असंभव होगया तो युवराज ने यह दायित्व अपने ऊपर लिया। राजवर्द्धन ने चोर को पकड़ने के लिए एक कुत्ते का रूप रखा और दुर्ग के मुखद्वार पर पहरा देने के लिए बैठ गया। कुछ देर बाद एक डाकू एक बड़ी गठरी लेकर उधर से निकला। कुत्ता बना राजवर्द्धन भूँकते हुए उस पर झपटा। पर डाकू उस पर पत्थर फेंककर भाग निकला। कुत्ता उसका पीछा करने लगा। डाकू सेनापति के घर की दिशा में भागने लगा और घर के पास आते ही उसने सेनापति का रूप धारण किया और घर के अन्दर चला गया।

राजवर्द्धन को वास्तविक बात समझ में आगयी । सेनापति वीरभद्र उस विषवृक्ष की अद्‌भुत महिमा का रहस्य जानकर उससे अनुचित लाभ उठा रहा है ।

अपने युवराज रूप में लौटकर राजवर्द्धन ने सैनिकों की सहायता से सेनापति वीरभद्र को बन्दी बनाया और सारा वृत्तान्त जानकर अपने पिता को सुनाया । महाराजा विष्णुवर्द्धन ने सारा वृत्तान्त सुनकर कहा, "बेटा, मुझे तो वह वृक्ष सच ही विषवृक्ष प्रतीत होता है। तुम उसे तुरन्त कटवा दो!"

राजवर्द्धन ने अपनी असहमति प्रकट करके

कहा, "पिताजी, हमारे कुल के इतिहास में इस वृक्ष की बड़ी महिमा है। असावधानी के कारण इस वृक्ष से हुई हानि को हम लाभ में बदल सकते हैं। हम उस वृक्ष पर प्रहरियों को नियुक्त करेंगे, ताकि कोई भी व्यक्ति उस वृक्ष के समीप न जा सके।"

दूसरे ही दिन उस विषवृक्ष पर कड़ा पहरा बैठा दिया गया।

एक माह बीत गया। एक दिन महारानी के सिर में भयानक पीड़ा होने लगी। राजवैद्य ने जाँच करके राजा से कहा, "महाराज, इस व्याधि को ठीक करने के लिए हमें लकड़हारे रामभरोसे की सहायता की ज़रूरत है। उसे वृक्षों और वन-औषधियों का बहुत ज्ञान है!"

युवराज राजवर्द्धन ने अपनी माता के इलाज को दृष्टि में रखकर सर्वत्र रामभरोसे की खोज करायी, पर उसका कहीं पता न लगा। राजवर्द्धन ने परेशान होकर स्वयं रामभरोसे का रूप रख लिया। इसके बाद वह राजभवन में राजवैद्य के पास गया।

वैद्य ने उससे कहा, "रामभरोसे, तुम देवकनेर को जानते हो। महारानी की चिकित्सा के लिए हमें उसकी जड़ों की ज़रूरत है।"

इस बीच एक और घटना हो गयी। जब राजवर्द्धन कारागार में था, तब उसी के मुँह से मंत्री प्रेमशंकर ने विषवृक्ष की महिमा के बारे में सुना था। तब से मंत्री उस विषवृक्ष की सहायता से स्वयं राजा बनने की सोच रहा था। उसने वृक्ष के प्रहरियों को फुसलाकर स्वयं राजा का रूप धारण कर लिया। उसकी योजना उस वृक्ष को कटवा देने की थी, ताकि भविष्य में कोई रूप-परिवर्तन न कर सके। यह सोचकर उसने प्रहरियों को आदेश दिया, कि वे उस विषवृक्ष को काट दें।

पर प्रहरियों में से कोई भी आगे न आया। उन्होंने कहा, "आप हमें क्षमा करें, यह काम हमसे न होगा।"

"तो एक काम करो! इधर आसपास कोई लकड़हारा दिखाई दे तो उसे मेरे पास बुला लाओ!" राजा बने मंत्री प्रेमशंकर ने कहा।

प्रहरी उस स्थल पर आये, जहाँ राजवर्द्धन रामभरोसे लकड़हारे के रूप में खड़ा था। वे उसे

मंत्री के पास ले आये। पर उसने भी वृक्ष को काटने से इनकार कर दिया।

राजा के रूप में स्थित मंत्री प्रेमशंकर ने कहा, "क्या तुम मेरे आदेश का पालन नहीं करोगे, तुम्हारा इतना साहस?" यह कहकर मंत्री ने प्रहरियों को आदेश दिया कि इस धृष्ट आदमी को कोड़े लगाये जायें। प्रहरी कोड़े लगाने ही वाले थे कि लकड़हारे के रूप में स्थित युवराज ने कुल्हाड़ी से विषवृक्ष को काटना शुरू कर दिया और कुछ ही देर में उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

प्रहरियों ने उन टुकड़ों को उसी समय जला दिया। तभी युवराज राजवर्द्धन ने अपना निजी रूप परिवर्तित कर लिया। यह देख मंत्री प्रेमशंकर वहाँ से भाग खड़ा हुआ। प्रहरियों ने युवराज के पैरों पर गिरकर क्षमा माँग ली।

इसके बाद राजवर्द्धन राजधानी में लौट आया। उसने महाराजा विष्णुवर्द्धन से मंत्री के द्रोह की बात बतायी और अद्भुत महिमा वाले विषवृक्ष के कटने का वृत्तान्त भी सुनाया।

राजा विष्णुवर्द्धन ने सारी बात सुनकर कहा, "बेटा, सुनो! इन सारी विपदाओं का कारण वे ताड़पत्र हैं, जिन पर हमारे वंश का इतिहास लिखा है। वे किसी और की दृष्टि में न पड़ें, इसलिए बड़ी सावधानी से उन्हें छुपा दो! और लकड़हारे रामभरोसे की खोज कराओ, ताकि देवकनेर वृक्ष की जड़ मिल सके और तुम्हारी माँ की पीड़ा दूर हो सके!"

राजवर्द्धन ने वास्तव में जनता का उपकार करना चाहा उसने विषवृक्ष की सहायता से अनेक रूप धारण किये, पर उसे हर बार इसका तीखा फल भोगना पड़ा। इसके बावजूद भी वह इस प्रक्रिया को छोड़ नहीं पाया। फिर भी वह निराश नहीं हुआ। क्योंकि इस प्रयत्न में उसने इस सत्य को जान लिया कि राज्य के कुछ और लोग विषवृक्ष की महिमा से परिचित होकर उसके राज्य को हड़पने के प्रयत्न में हैं। राजवर्द्धन ने अंत में मंत्री के षड्यंत्र को भोप लिया और उसको अपनी राह से हटा लिया। इसप्रकार वह अपने प्रयत्न में सफल हुआ।

अब राजवर्द्धन की आँखें खुल चुकी थीं। अपने पिता के बाद जब वह राजा बना, तब उसने अपनी शक्ति पर आस्था रखकर शासन किया।
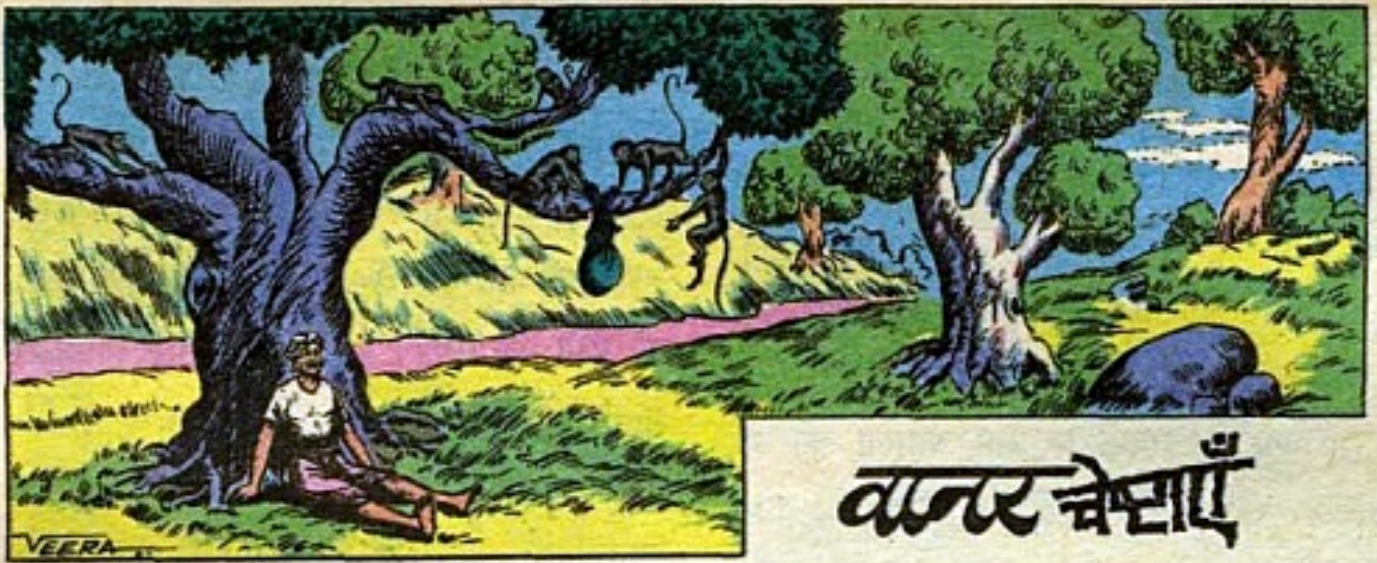
वानर चेष्टाएँ

एक गाँव में सोमनाथ नाम का एक वृद्ध रहता था। वह घास काटकर अपना और अपनी पत्नी शीला का गुज़ारा करता था। एक दिन शीला ने उसे जाते समय चिथड़ों की एक थैली दी। बूढ़े सोमनाथ ने पहाड़ी के पास जाकर एक वृक्ष की शाखा से चिथड़ों की थैली लटका दी और घास काटने में लग गया। कुछ देर बाद वह पेड़ की छाया में जा बैठा। इस बीच कहीं से वानरों की एक टोली आ धमकी और पेड़ की शाखा से लटक रही थैली को लेकर उसके सारे चिथड़े निकालकर उन्हें दांतों से चीर डाला।

बूढ़ा सोमनाथ यह सारा दृश्य देखकर भी मौन बैठा रहा। वानरों ने उसे देखकर थोड़ी देर तो दांत किटकिटाये, फिर उसे एक मूर्ति समझकर वे उसके पास आये। उन्होंने आपस में कोई निर्णय करके बूढ़े को उठा लिया और लेजाकर पास के एक उजाड़ मंदिर की सीढ़ियों पर बिठा दिया।

इसके बाद सभी वानर वहाँ से चले गये और कुछ ही देर में मुट्ठी भरकर रुपये ले आये। उन्होंने उन रुपयों को बूढ़े के सामने बिखेर दिया और चले गये।

तब तक बूढ़ा सोमनाथ आँखें बंद करके बिना हिले-डुले बैठा रहा। वह समझ गया कि वानरों ने आदमियों की नकल उतारी है। उस रास्ते से गुज़रनेवाले लोग मंदिर के सामने सिक्के फेंककर चले जाते होंगे, जिसे वानरों ने चुनकर किसी सुरक्षित स्थान पर रख दिया होगा और अब बूढ़े के सामने बिखेर दिया है।

बंदरों के चले जाने के बाद बूढ़ा सोमनाथ वानर चेष्टाओं पर मन ही मन हँस दिया। परेशानी के बावजूद आज उसका भाग्य अच्छा रहा। बूढ़े ने सारे पैसे चुन लिये और घर लौटते समय बाज़ार से अपने और शीला के लिए नये वस्त्र ख़रीदे। घर आकर उसने बचे हुए पैसे अपनी

२५ वर्ष पूर्व चन्दामामा में प्रकाशित कहानी

पत्नी को दिये और मिष्ठान्न बनाने के लिए कहा ।

नये वस्त्र पहनकर जब सोमनाथ और उसकी पत्नी शीला भोजन कर रहे थे, तब कमला नाम की एक पड़ोसिन आयी और चकित होकर बोली, "अरी, शीला! आज कुछ बात है क्या? तुम दोनों यों सजधज कर दावत खा रहे हो?"

शीला ने अपनी पड़ोसन कमला को भी पकान्न खाने को दिये और उसे वानरों की कथा सुनायी ।

कमला सारी कहानी सुनकर झपटती हुई अपने घर आयी और अपने पति को वानरों का वृत्तान्त सुनाकर बोली, "तुम भी कल पहाड़ी की तरफ़ निकल जाओ और सोमनाथ की तरह वानरों से पैसे लेकर आओ ।"

दूसरे दिन कमला ने एक थैली में चिथड़े भर कर अपने पति को दिये । बूढ़ा चन्दर थैली लेकर पहाड़ी के पास वाले मैदान में पहुँचा । उसने पेड़ की डाल से थैली लटका दी और एक जगह मूर्ति की तरह निश्चल होकर बैठ गया ।

थोड़ी देर में वानरों का झुंड आ पहुँचा उन्होंने थैली उतारकर चिथड़ों को चीर डाला और उस बूढ़े चन्दर को मूर्ति समझकर उसे उठाकर भागने लगे ।

वानरों की इस चेष्टा को देखकर बूढ़े चन्दर को हँसी आ गयी । और उसने आँखें खोलकर वानरों की तरफ देखा । यह देखकर वानरों को क्रोध आगया । उन्होंने बूढ़े चन्दर को वहीं पर पटक दिया और उसके सिर पर टिक्की लगाने लगे
पटक दिया और उसके सिर पर टिक्की लगाने लगे ।
उन्होंने नाखुनों से उसके सारे शरीर में खरोंचें

बूढ़े चन्दर के शरीर से खून बहने लगा । वह जैसे-तैसे पैर घसीटता हुआ अपने घर पहुँचा ।

इस बीच कमला ने अपने सारे पुराने वस्त्र जला डाले थे । वह नये कपड़ों को पहनकर सारे मुहल्ले में इतराने का विचार कर रही थी । जब उसने अपने पति चन्दर को ऐसी दुर्दशा में आते हुए देखा तो उसके सपनों का महल ढह गया और वह बुत की तरह खड़ी रह गयी. ।

प्रकृति के आश्चर्य

लम्बे दांत

अमरीका के मसाचुसेट्स हेलिंग संग्रहालय में एक जोड़ी दाढ़ें हैं जो अत्यन्त लम्बी हैं। तिमिंगल के ग्यारह इंच लम्बे इन दांतों का वज़न ३.८८ किलोग्राम है।
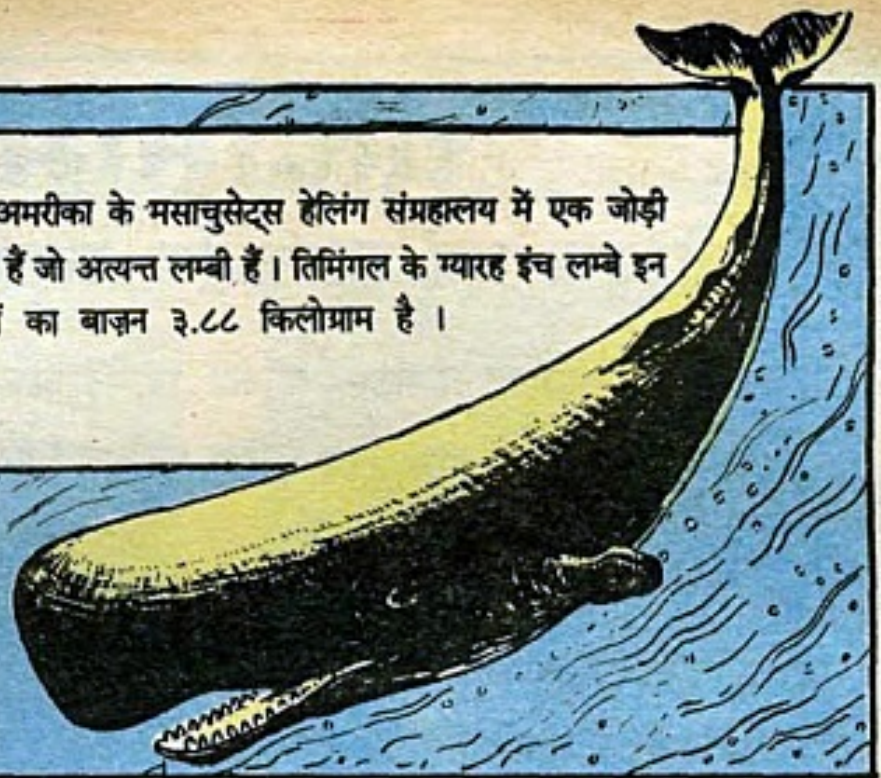
मक्खियां

घरों में आम तौर पर पायी जानेवाली मक्खियां संसार की कई भयानक बीमारियों का कारण बनी हुई हैं। हैजा, टाईफाइड, ताऊन जैसी तीस प्रकार की भयंकर व्याधियां इन्हीं मक्खियों के कारण फैलती हैं।

ओपोसं

अमरीका में पाया जानेवाला ओपोसं—जंगली बिलाव की जाति का एक जानवर है। इसका पीछा करने पर, यदि यह शिकारी के हाथों से बचाव की स्थिति में हो, तो हिले डुले बिना मृत होने का स्वांग रच लेता है।

मनोरंजक एवं ज्ञानवर्द्धक उत्कृष्ट मासिक पत्र

* चन्दामामा हमारे पुराण व साहित्य के श्रेष्ठ रत्नों को क्रमबद्ध रूप में प्रदान करता है ।
* व्यापक दृष्टिकोण को लेकर विश्व साहित्य की अद्भुत काव्य कथाओं को सरल भाषा में प्रस्तुत करता है ।
* मृदुहास्य, ज्ञानवर्द्धक तथा मनोरंजक सुन्दर कहानियों द्वारा पाठकों को आकृष्ट करता है ।
* हमारी पुराण गाथाओं को प्रामाणिक रूप में परिचय करता है ।
* हास्यपूर्ण प्रसंगों तथा व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करने वाले शीर्षकों के साथ पाठकों का उत्साह वर्द्धन करता है ।
* चन्दामामा केवल आपके जीवन में ही नहीं बल्कि आपके बन्धु एवं मित्रों के जीवन में भी रचनात्मक पात्र का व्यवहार करता है। इसलिए आप अपने घनिष्ट मित्रों को चन्दामामा भेंट कीजिए ! उपहार में दीजिए !

बच्चों के लिए प्रस्तुत चन्दामामा, पाठकों में नवयौवन का उत्साह एवं आनन्द प्रदान करता है ।

तेरह भाषाओं में प्रकाशित चन्दामामा का साप किसी भी भाषा का ग्राहक बन सकते हैं !

तेलुगु, तमिल, हिन्दी, अंग्रेज़ी, असामी, बंगाली, गुजराती, कन्नड, मलयालम, मराठी, उडिया, पंजाबी और संस्कृत ।

वार्षिक चन्दा: रु. ३०-००

आप किस भाषा का चन्दामामा चाहते हैं, इसका उल्लेख करते हुए निम्न लिखित पते पर अपना चन्दा भेजिए:

डाल्टन एजेन्सीस

चन्दामामा बिल्डिंग्स,

वडपलनी, मद्रास-६०० ०२६.

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ मार्च १९८८ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

M. Natarajan

Mohan D. Desai

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ जनवरी १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें: **चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६**

नवम्बर के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : बुलबुला फूट न जाए!

द्वितीय फोटो : आईना टूट न जाए!!

प्रेषक : रमेश कमरानी, ४६/८, टी. टी. नगर, भोपाल–४६२ ००३ (म.प्र.)

चन्दामामा

भारत में वार्षिक चन्दा : रु. ३०-००

चन्दा भेजने का पता :

डॉल्टन एजेन्सीस, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास - ६०० ०२६

अन्य देशों के चन्दे सम्बन्धी विवरण के लिए निम्न पते पर लिखिये :

चन्दामामा पब्लिकेशन्स, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास -६०० ०२६

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISHWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

CHANDAMAMA